अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ में संवेदना और शिल्प

(एम.फिल. हिन्दी में उपाधि हेतु प्रस्तुत)

लघु-शोध-प्रबंध

शोधार्थी
दिनेश अहिरवार
नामांकन संख्या : En16-00001

शोध निर्देशक
डॉ. राहुल सिद्धार्थ
सहायक प्राध्यापक
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

हिन्दी विभाग

भाषा, साहित्य और कला केंद्र

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

अकादमिक परिसर, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश – 464551 (भारत)

2018

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ में संवेदना और शिल्प

(एम.फिल. हिन्दी में उपाधि हेतु प्रस्तुत)

लघु-शोध-प्रबंध

शोधार्थी
दिनेश अहिरवार
नामांकन संख्या : En16-00001

शोध निर्देशक
डॉ. राहुल सिद्धार्थ
सहायक प्राध्यापक
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

विभागाध्यक्ष
(हिंदी विभाग)

हिन्दी विभाग
भाषा, साहित्य और कला केंद्र
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
अकादमिक परिसर, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश – 464551 (भारत)

2018

शोधार्थी द्वारा घोषणा-पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता/करती हूँ कि यह शोध कार्य **अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' में संवेदना और शिल्प** डॉ॰ / प्रोफ़ेसर **राहुल सिद्धार्थ** (शोध निर्देशक), विभाग/केन्द्र **हिन्दी विभाग / भाषा, साहित्य और कला केंद्र** के अधीन किया गया मेरा मौलिक शोध-कार्य है, जिसे विभागीय शोध समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं, यह भी घोषणा करता / करती हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबंध / लघु-शोध-प्रबंध में किसी प्रकार का ऐसा तथ्य उदृत नहीं किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो।

साथ ही मैं यह भी घोषणा करता हूँ कि--

1. मैंने यू.जी.सी अधिनियम 2009 के मापदण्डों के अनुसार एक सत्र का कोर्स वर्क सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है।
2. मैंने लघु-शोध-प्रबंध प्रस्तुती पूर्व सेमिनार भी दिया है और दिए गए निर्देशों / सुझावों के आधार पर संशोधनों को सफलतापूर्वक शामिल किया है।
3. मेरे द्वारा शोध-प्रबंध / लघु-शोध-प्रबंध से संबंधित शोध कार्य को ISSN / रेफर्ड जर्नल में एक शोध-पत्र प्रकाशित किया गया है जिसकी छायाप्रति लघु-शोध-प्रबंध के अन्त में संलग्न हैं। मैंने कॉन्फ्रेंस / संगोष्ठी में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किये हैं।
4. मेरे द्वारा प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध में कोई भी कंटैंट, किसी अन्य शोध या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है। यदि Plagiarism के अन्तर्गत कोई भी content पाया जाता हैं, तो उसके लिए मैं स्वयं जिम्मेवार रहूँगा।

स्थान: ....   हस्ताक्षर

दिनांक: ....

<u>सर्वाधिकार</u>

मैं, **दिनेश अहिरवार** एतद् द्वारा घोषणा करता / करती हूँ कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, रायसेन द्वारा इस शोध-प्रबंध / लघु-शोध-प्रबंध **अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' में संवेदना और शिल्प** को शैक्षणिक / अनुसंधान उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने के अधिकार होंगे।

नोट: शोधार्थी अथवा अन्य द्वारा शोध-प्रबंध / लघु-शोध-प्रबंध के आँकड़ों / निष्कर्ष का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा बशर्ते कि विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाए।

स्थान: ....   हस्ताक्षर

दिनांक: ....   (शोधार्थी)

प्रमाण-पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि शोध विषय **अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ में संवेदना और शिल्प** श्री / श्रीमती / कु. **दिनेश आहिरवार** द्वारा किया गया शोध कार्य है, जिसे साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में एम.फिल. उपाधि के लिए मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया ।

मेरी जानकारी के अनुसार:

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।

2. यह शोध कार्य यू.जी.सी. के दिशा निर्देशों को पूरा करता हैं।

3.विश्वविद्यालय की एम.फिल. / पी-एच.डी. उपाधि से संबंधित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

स्थान: .... हस्ताक्षर

दिनांक: .... शोध-निर्देशक

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	ii - vi
प्रथम अध्याय :- अशोक वाजपेयी : काव्य एवं साहित्यिक व्यक्तित्व	01 - 59
1.1 विभिन्न काव्य-संग्रह एवं रचनात्मक प्रक्रिया	
1.2 आलोचना ग्रन्थ एवं आलोचनात्मक दृष्टि	
1.3 अन्य साहित्यिक विधाएँ	
द्वितीय अध्याय :- 'कहीं कोई दरवाजा' : अंतर्वस्तु एवं दर्शन	60 - 119
2.1 समाज, संस्कृति और दर्शन	
2.2 प्रकृति और प्रेम सौन्दर्य	
2.3 मानवीय मूल्य और संवेदना	
तृतीय अध्याय :- 'कहीं कोई दरवाजा' में शिल्पगत वैशिष्ट्य	120 - 161
3.1 समकालीन काव्य भाषा और अशोक वाजपेयी की कविता	
3.2 काव्य-संग्रह में भाषा सम्बन्धी प्रयोग	
3.3 काव्य संग्रह में शिल्पगत वैशिष्ट्य	
उपसंहार	162 - 167
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	168 - 172
परिशिष्ट : प्रकाशित शोध-पत्र की छायाप्रति संलग्न	

भूमिका

साहित्य समाज की सबसे अमूल्य निधि है जिसमें व्यक्ति और समाज का परस्पर सम्बन्ध भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। कोई भी साहित्यकार अपने समय एवं समाज से विलग रहकर साहित्य की रचना नहीं कर सकता | क्योंकि साहित्य और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। साहित्यकार जिस समाज की रचना अपनी कृति में करता है उसके सूत्र वह अपने ही समाज से जोड़ता है। समाज में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। साहित्य महज समाज का प्रतिबिम्ब नहीं, बल्कि मार्ग प्रशस्ति का भी महत्वपूर्ण साधन है | साहित्य की विभिन्न विधाओं में 'कविता' प्रमुख विधा रही है। हिन्दी साहित्य में कविता का समृद्ध इतिहास रहा है। 'कविता' व्यक्ति के जीवन और जगत के अंतर्संबंधों को संक्षिप्त एवं सरल रूप में प्रस्तुत करती है। 'कविता' भावों, विचारों और अनुभवों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। 'कविता' का सीधा सम्बन्ध कवि के हृदय से होता है, जिसमें उसके जीवन के विभिन्न अनुभव विद्यमान रहते हैं। आधुनिक युग में 'कविता' विभिन्न विचारधाराओं को एक साथ लेकर चल रही है | यह समकालीन हिन्दी कविता की प्रमुख विशेषता है |

समकालीन हिन्दी कवि अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह **'कहीं कोई दरवाजा'** पर आधारित प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध का शोध विषय **अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' में संवेदना और शिल्प** है | प्रस्तुत काव्य-संग्रह की कविताओं को शोध की दृष्टि से तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय के अंतर्गत **अशोक वाजपेयी : काव्य एवं साहित्यिक व्यक्तित्व** है। इसे तीन उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है जिसमें सर्वप्रथम कवि अशोक वाजपेयी के साहित्यिक जीवन परिचय का अध्ययन किया गया है। उसके उपरांत प्रथम उप-अध्याय "विभिन्न काव्य-संग्रह एवं रचनात्मक प्रक्रिया" के अंतर्गत अशोक वाजपेयी के अब तक प्रकाशित पंद्रह काव्य-संग्रहों का संक्षिप्त परिचयात्मक अध्ययन किया गया है तथा अशोक वाजपेयी के इस व्यापक काव्य-

संसार में प्रयुक्त रचनात्मक प्रक्रिया के विभिन्न सूत्रों का अध्ययन किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय "आलोचना ग्रन्थ एवं आलोचनात्मक दृष्टि" है। इसके अंतर्गत अशोक वाजपेयी के प्रमुख आलोचना ग्रंथों तथा अन्य आलोचना ग्रंथों का परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अशोक वाजपेयी के आलोचनात्मक ग्रन्थों के अध्ययन के दौरान आलोचना ग्रंथों में प्रयुक्त उनकी आलोचना दृष्टि का अध्ययन किया गया है। साथ ही इन आलोचना ग्रन्थों का समकालीन हिन्दी आलोचना जगत में क्या स्थान है- इसका भी अध्ययन किया गया है। अशोक वाजपेयी ने साहित्य की विविध विधाओं में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। वे कवि होने के साथ-साथ एक कुशल गद्यकार भी हैं | तृतीय उप-अध्याय 'अन्य साहित्यिक विधाएँ' हैं। इसके अंतर्गत अशोक वाजपेयी की विभिन्न साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन किया गया है, जिसमें उनकी विभिन्न गद्य रचनाएँ, विभिन्न संपादित रचनाएँ, विभिन्न अनुदित रचनाएँ तथा विभिन्न संपादित पत्र-पत्रिकाओं के साथ साक्षात्कार आदि का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध का द्वितीय अध्याय **"कहीं कोई दरवाजा : अंतर्वस्तु एवं दर्शन"** है। इस अध्याय को तीन उप-अध्यायों में वर्गीकृत किया गया है | प्रथम उप-अध्याय के अंतर्गत काव्य-संग्रह की कविताओं में निहित "समाज, संस्कृति और दर्शन" का अध्ययन किया गया है। **'कहीं कोई दरवाजा'** काव्य-संग्रह की कविताओं में व्याप्त वर्तमान सामाज, संस्कृति और दर्शन का अध्ययन करने के लिए समाज, संस्कृति एवं दर्शन का अर्थ, विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गईं परिभाषाएँ, साहित्य, समाज, संस्कृति एवं दर्शन के आपसी संबंध का अध्ययन करते हुए अशोक वाजपेयी की कविताओं का अध्ययन किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय "प्रकृति और प्रेम सौन्दर्य" है। इसके अंतर्गत प्रकृति एवं प्रेम-सौन्दर्य का अर्थ, विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ तथा प्रकृति एवं प्रेम-सौन्दर्य का साहित्य से सम्बन्ध स्थापित करते हुए '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में 'प्रकृति एवं प्रेम-सौन्दर्य' के चित्रण का अध्ययन किया गया है। तृतीय उप-अध्याय "मानवीय मूल्य और संवेदना" है। इस उप-

अध्याय के अंतर्गत मूल्य का अर्थ, विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ, मूल्य के प्रकार, मानवीय मूल्य क्या है **?**, मानवीय मूल्य और काव्य का सम्बन्ध स्थापित करते हुए **'कहीं कोई दरवाजा'** काव्य-संग्रह की कविताओं में निहित मानवीय मूल्य और संवेदनाओं का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध का तृतीय अध्याय "**'कहीं कोई दरवाजा' में शिल्पगत वैशिष्ट्य**" है। इसके अंतर्गत कविताओं में प्रयुक्त शिल्पगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करने के लिये अध्याय को तीन उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम उप-अध्याय "समकालीन काव्य-भाषा और अशोक वाजपेयी की कविता" है। इसके अंतर्गत समकालीनता का अर्थ, विभिन्न साहित्यकार व विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ तथा समकालीन काव्य-भाषा के अध्ययन के लिए प्रमुख समकालीन कवियों की कविताओं का अध्ययन किया गया है | समकालीन काव्य-भाषा के अध्ययन के क्रम में अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रयुक्त भाषा तथा उसके सामाजिक सन्दर्भों को विश्लेषित किया गया है। अशोक वाजपेयी अपनी काव्य-भाषा के प्रति बेहद संवेदनशील कवि हैं | उन्होंने अपनी कविताओं में भाषा संबंधी विभिन्न प्रयोग किए हैं | द्वितीय उप-अध्याय "काव्य-संग्रह में भाषा सम्बन्धी प्रयोग" है। इसके अंतर्गत '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में भाषा सम्बन्धी प्रयुक्त शब्दावली का अध्ययन किया गया है। अशोक वाजपेयी अपनी काव्य-भाषा के विभिन्न प्रयोगों से एक नवीन शिल्प-विधान प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं | तृतीय उप-अध्याय "काव्य-संग्रह में शिल्पगत प्रयोग" है। इसके अंतर्गत '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में किए गये नवीन शिल्पगत प्रयोगों का अध्ययन किया गया है, जिसके अंतर्गत काव्य-संग्रह में प्रयुक्त भाषा, प्रतीक तथा बिम्ब आदि के नवीन प्रयोगों का अध्ययन किया गया है।

समकालीन कविता वर्तमान मनुष्य जीवन के यथार्थ की कविता **है**। समकालीन कविता समसामयिक ज्वलन्त मुद्दों को अपना विषय बनाती है। यह एक ऐसे दौर की कविता है, जहाँ पुरानी

रूढ़िवादी मानसिकता का स्पष्टतः प्रतिरोध दिखाई देता है। समकालीन कविता मनुष्य के समकालीन भावबोध की कविता है, जिसमें उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं का यथार्थ चित्रण दृष्टिगोचर होता है। समकालीन कविता मनुष्य के वर्तमान जीवन की समस्याओं और व्यक्ति के समसामयिक अंतर्विरोधों की कविता है। समकालीन कवि अशोक वाजपेयी के '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में समकालीन मनुष्य के जीवन संघर्ष का यथार्थवादी चित्रण किया गया है।

समकालीन हिन्दी काव्य-संसार में विभिन्न कवियों ने अपनी अलग-अलग पहचान अर्जित की है। समकालीन हिन्दी कवियों में अशोक वाजपेयी एकमात्र ऐसे कवि हैं, जो कविता के बनाये गए परम्परागत ढांचों से अलग अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। वह अपनी कविताओं में विपरीत परिस्थितियों में भी विद्रोह नहीं करते बल्कि प्रतिकूल परिस्थितियों का पूरी मुस्तैदी के साथ सामना करते हैं| अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में जोखिम भरे समय में भी जीवन जीने के सुन्दर तत्वों की तलाश करने वाले कवि हैं। अशोक वाजपेयी न केवल कवि एवं आलोचक हैं बल्कि साहित्य की विभिन्न विधाओं में भी कारगर हस्तक्षेप करते हैं। **'कहीं कोई दरवाजा'** काव्य-संग्रह समकालीन हिन्दी कविता में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। विशिष्ट इन अर्थों में कि यह मनुष्य के वर्तमान जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रकृति, प्रेम-सौन्दर्य और मानवीय मूल्यों के प्रश्न को साहित्य में स्थान देता है। इस काव्य-संग्रह की कविताओं में वर्तमान मनुष्य के समय और समाज दोनों की पड़ताल की गई है। अशोक वाजपेयी इस काव्य-संग्रह में समय-सापेक्ष नवीन उद्भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। यह काव्य-संग्रह संवेदनात्मक और शिल्पगत दृष्टि से भी समकालीन हिन्दी कविता के व्यापक परिदृश्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध को सम्पूर्णता प्रदान करने में विभिन्न लोगों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है| सर्वप्रथम मैं अपने गुरू एवं शोध निर्देशक डॉ. राहुल सिद्धार्थ का वंदन एवं आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके

कुशल निर्देशन में यह जटिल कार्य संपन्न हुआ | मैं अपनी माता श्रीमती ममता एवं पिता श्री कोमल अहिरवार का ऋणी हूँ | मैं उनका कोटि-कोटि वंदन करता हूँ | मैं अपने मामा श्री हीरालाल, भैया लखन, छोटे भाई संजय बहिन प्रतीक्षा एवं प्रियंका का आभारी हूँ |

मैं आभारी हूँ, डॉ. राजेंद्र यादव, डॉ. मनीष कुमार, डॉ. पंकज चतुर्वेदी, डॉ. रजनी मिश्रा, डॉ. पायल महोबिया, एवं डॉ. हर्षबाला शर्मा का जिनकी प्रेरणा और सहायता से इस कार्य को मुकम्मल कर सका | मैं अपने सहपाठी मित्रों में अनीश कुमार, अशोक कुमार सखवार, अनिल अहिरवार, कपिल कुमार गौतम, रजत शर्मा, शेषनाथ वर्णवाल, सुनीता गुरूंग, शिल्पी, प्रतिमा सिंह का आभार मानता हूँ, जिनकी सहायता से यह शोध कार्य संपन्न हुआ |

विभिन्न साहित्यकार, विद्वानों एवं साँची विश्वविद्यालय के समस्त प्राध्यापकों, समस्त कर्मचारियों तथा उन समस्त प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष शक्तियों का आभारी हूँ, जिनके योगदान से मैं यह शोध कार्य संभव कर पाया |

दिनांक : 22-01-2018

शोधार्थी

दिनेश अहिरवार

हिन्दी विभाग

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय,

बारला, जिला-रायसेन (म.प्र.) 4644551

प्रथम अध्याय

अशोक वाजपेयी : काव्य एवं साहित्यिक व्यक्तित्व

जीवन परिचय

अशोक वाजपेयी का जन्म 16 जनवरी सन् 1941 ई. में जिला दुर्ग मध्यप्रदेश में हुआ था। (छत्तीसगढ़ के अलग राज्य बनने से जिला दुर्ग अब छत्तीसगढ़ राज्य के अधीन में आता है।) अशोक वाजपेयी के पिता का नाम श्री परमानंद वाजपेयी था। उनके पिता श्री परमानंद वाजपेयी का पैतृक गाँव राजापुर गढ़ेवा उत्तरप्रदेश में था। अशोक वाजपेयी अपनी माँ की पहली संतान थे। इनके नाना-नानी मध्यप्रदेश के सागर जिला की एक तहसील खुरई में रहते थे। अशोक वाजपेयी का ज्यादातर बचपन उनके नाना-नानी के साथ खुरई में ही व्यतीत हुआ है। उनके नाना खुरई के तहसीलदार हुआ करते थे। अपने जन्म के संदर्भ में अशोक वाजपेयी कहते हैं कि मेरा जन्म दुर्ग में हुआ था। मेरे नाना डिप्टी कलेक्टर थे। मैं अपनी माँ की पहली संतान था। लेकिन दुर्ग तो मुझे रत्ती-भर याद नहीं। मेरी जो पहली-पहली याद है वह खुरई की, जो कि सागर की एक तहसील है। मेरे नाना वहाँ तहसीलदार थे। मेरा बहुत सारा जीवन नाना-नानी के साथ गुजरा है। मुझे याद है कि खुरई में जहाँ हम रहते थे, वहाँ एक बड़ा भारी जैन मंदिर था। वहाँ एक अखाड़ा भी था। खुरई के घर के सामने की भी मुझे याद है कस्बे जैसी जगह थी।

अशोक वाजपेयी के पिता श्री परमानन्द वाजपेयी बैसवाडा उत्तरप्रदेश के थे, और इनका पैतृक घर राजापुर गढ़वा में था। इस सन्दर्भ में 'समय के पास समय' कविता संग्रह की कविता 'अपने नवजात पोते के लिए एक स्वागत-गीत' में लिखते हैं कि 'राजापुर गढ़ेवा में अपनी भंडरिया से कुछ सूख सा गया पेडा निकालकर, सबको बाँट रही हैं आजी;' उनके दादा वेदान्त के मूर्धन्य विद्वान तथा अच्छे किसान थे। अशोक वाजपेयी के ताऊ का नाम आनंद मोहन वाजपेयी था। आनंद मोहन वाजपेयी ने बनारस से शिक्षा

प्राप्त कर डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर में हिन्दी विभाग की स्थापना की और संस्थापक अध्यक्ष के रूप में कार्य किया था। आनंद मोहन वाजपेयी रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह, जो एक कला प्रेमी के रूप में विख्यात थे, उनके यहाँ लेखाकार के रूप में पदस्थ थे। अशोक वाजपेयी के जीवन के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अशोक वाजपेयी को पढ़ने-लिखने की प्रेरणा इनके ताऊ से ही प्राप्त हुई। जब वह छोटे थे तब वे उनके ताऊ इन्हें कहानियों की पुस्तकें दिया करते थे और उन्हें पढ़ने के लिए भी प्रेरित करते थे। कुछ समय पश्चात् अशोक वाजपेयी अपने नाना-नानी के साथ सागर आ गए। जहाँ पर उनके माता-पिता भी रहते थे। आनंद मोहन वाजपेयी की प्रेरणा और दी हुई पुस्तकों को पढ़कर अशोक वाजपेयी के मन में कविता लिखने का विचार आया जब वे कक्षा 6वीं में थे। अशोक वाजपेयी बचपन में 'राजेश' उपनाम से कविता लिखा करते थे जिसे वह बदलकर 'अनुराग' करना चाहते थे। 'अनुराग' उपनाम के नाम परिवर्तन का जिक्र सन् 2008 ई. में प्रकाशित कविता संग्रह 'दुःख चिट्ठी रसा है' की कविता 'पीछे-आगे' में लिखते है कि 'छठवीं कक्षा में कविता लिखना शुरू करने पर अपना उपनाम, 'राजेश' जैसे चलताऊ नाम से बदलकर 'अनुराग' इत्यादि कुछ करना चाहता हूँ।' अशोक वाजपेयी को कविता लिखने का शगल बचपन से ही था। जो छठवीं कक्षा से ही दृष्टिगोचर होने लगता है।

अशोक वाजपेयी महज अपनी ही विद्वता प्रकट नहीं करते बल्कि उनके पूर्वजों का भी एक समृद्ध इतिहास रखते हैं, जो शिक्षा और कवि-कर्म के लिए प्रेरणा के रूप में उभरकर सामने आए हैं। अशोक वाजपेयी की शिक्षा-दीक्षा गोपालगंज, सागर के लाल स्कूल से प्रारंभ होती है। लाल स्कूल अपने घर से थोड़ी दूर लेकिन नाना के घर के पास में पड़ता था। इसलिए अशोक वाजपेयी अधिकांशतः अपने ननिहाल में ही रहा करते थे। इस सन्दर्भ स्वयं अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि ''**मैं अपने घर पर कम नाना के घर अधिक रहता था। पढ़ने की जगह वहीं और सोने की। खाना अलबत्ता अपने घर पर ही खाता था हालांकि जब तब वहीं भी ननिहाल में। नानी चाय अलग किसम की मेरे लिए**

बनाती थी सो वह चाव से वहीं पीता था । एक तरह से मेरे पालन-पोषण की जिम्मेदारी नाना-नानी ने, जिन्हें हम अपनी माँ की तरह दादा-अम्मा कहते थे, ले रखी थी ।''[1]

अशोक वाजपेयी के प्रारंभिक शिक्षक दशरथलाल असाटी थे, जिनका नाम वे अपने कविता संग्रह 'दुःख चिट्ठी रसा है' की कविता 'पीछे-आगे' में लिखते हैं । अशोक वाजपेयी ने कक्षा दसवीं के बाद बारहवीं में साइंस की पढ़ाई की और फिर डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से अंग्रेजी, संस्कृत और इतिहास विषय से बी.ए. की शिक्षा ग्रहण की किया । अशोक वाजपेयी ने सागर विश्वविद्यालय से बी.ए. करने के उपरांत स्टीफेंस कॉलेज दिल्ली से अंग्रेजी विषय में एम. ए. किया । इस सन्दर्भ में अपने साक्षात्कार में वह कहते हैं कि 'वे दिन मुझे ठीक से याद हैं । दिल्ली की चिपचिपी गर्मी थी जब जुलाई सन् 1960 ई. में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करने सेंट स्टीफैंस कॉलेज में दाखिला लेकर पहली बार रहने पढ़ने के लिए दिल्ली आया था। मेरा घर सागर में था जो कि मध्यप्रदेश का एक छोटा-सा शहर था जिसके विश्वविद्यालय से मैंने बी.ए. किया था। मेरी तब तक की सारी शिक्षा-दीक्षा हिन्दी माध्यम से ही हुई थी हालांकि मैंने बी.ए. स्तर पर अंग्रेजी विषय लिया था। विश्वविद्यालय में प्रथम श्रेणी में होने के कारण और मेरे पिता के इतिहासकार मित्र डॉ. विश्वेश्वर प्रसाद की सिफारिश पर मुझे कॉलेज में दाखिला आसानी से मिल गया था ।

अशोक वाजपेयी आठ भाई-बहिन हैं जिनमें अशोक वाजपेयी सबसे बड़े हैं । तीन भाइयों में अनिल वाजपेयी, अरुण वाजपेयी, उदयन वाजपेयी और चार बहिनें हैं । उदयन वाजपेयी अशोक वाजपेयी के सबसे छोटे भाई हैं । उनका जन्म सन् 1960 ई. में सागर में ही हुआ था । उदयन वाजपेयी भी साहित्य के क्षेत्र में अपना महतवपूर्ण स्थान रखते हैं । उदयन वाजपेयी समकालीन हिन्दी कवि एवं कथाकार के रूप जाने जाते हैं । अशोक वाजपेयी का विवाह हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक नेमिचंद जैन की पुत्री

---

1. सुमा, अबू. अशोक वाजपेयी की काव्य संवेदना. असम : असम विश्वविद्यालय, सन् 2014. पृष्ठ - 09 ।

रश्मि जैन के साथ सन् 1966 ई. में हुआ था। रश्मि जैन एक अच्छी कथक नृतिका के रूप में भी जानी जाती हैं।

अशोक वाजपेयी ने सेंट स्टीफेंस कॉलेज, दिल्ली में दो वर्षीय अंग्रेजी विषय से एम.ए. करने के पश्चात् सन् 1963 ई. में दयालसिंह कॉलेज, दिल्ली में अंग्रेजी विषय के प्राध्यापक के रूप में दो वर्षो तक अध्यापन कार्य किया। सन् 1973 ई. में वह भारतीय प्रशासनिक सेवा में चयनित हो गये। अशोक वाजपेयी ने 27 वर्षो की प्रशासनिक सेवा के दौरान सबसे अधिक समय भोपाल में व्यतीत किया। अशोक वाजपेयी ने प्रशासनिक सेवाओं के दायित्व का निर्वहन करते हुए भी साहित्य और कलाओं से लगातार सम्बन्ध बनाये रखा है। इसी दौरान उन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में सैकड़ों काव्य पाठों का आयोजन और विश्व कविता सम्मेलन के साथ-साथ एशियाई कविता और भारतीय कविता की त्रैवार्षिकी आदि आयोजित की हैं। संस्कृति और कलाओं को जीवित रखने के लिए उन्होंने विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी समय-समय पर आयोजन किया है। सांस्कृतिक आयोजनों में खजुराहो नृत्य, सारंगी मेला, ध्रुपद समारोह आदि प्रमुख हैं। इन तमाम सांस्कृतिक कार्यक्रमों से एक ओर जहाँ संस्कृति को सहेजने की पहल चलाई गई वहीं दूसरी ओर विभिन्न देशों के कवि-लेखकों, संगीतकार, नृत्यकार, अभिनेताओं, आलोचकों, पत्रकारों आदि को अपनी प्रतिभा कौशल की अभिव्यक्ति के अवसर प्रदान किये हैं।

अशोक वाजपेयी मध्यप्रदेश में लगातार सत्ताईस वर्षों तक संस्कृतिकर्मी और प्रशासक के रूप में रहते हुए कविता, आलोचना और साहित्य की अन्य विधाओं में भी कारगर हस्तक्षेप करते रहे हैं। अशोक वाजपेयी विभिन्न पदों पर रहते हुए भी अपना कवि कर्म नहीं छोड़ते। अशोक वाजपेयी को कविता पढने और लिखने की रूचि कक्षा 6वीं से ही पैदा हो गई थी। इस सन्दर्भ में विनोद कुमार शुक्ल से साक्षात्कार करते हुए वह कहते हैं कि 'मुझे ऐसा ख्याल आता है कि जब मैं छठी कक्षा में था तो शायद पहला गणतंत्र दिवस इसी वर्ष पड़ा था, यानी 1950। उस उपलक्ष्य में कोई चार पंक्तियाँ या तुकबन्दियाँ

मैंने लिखी थीं।' अशोक वाजपेयी को कविता लिखने की प्रेरणा लक्ष्मीधर आचार्य ने दी थी। वे कविता लिखने की प्रेरणा के सन्दर्भ में अपने साक्षात्कार में कहते हैं कि "**एक तो मेरा संस्कार डाला लक्ष्मीधर आचार्य ने। उन्होंने मेरे मन में कविता के प्रति आदर और गरिमा का भाव पैदा किया। उन्होंने उत्तर प्रदेश के हमारे पैतृक गाँव में मेरे जनेऊ के मौके पर पिता के हाथों पुस्तकों का एक उपहार भेजा था जिसमें 'हरी घास पर क्षण भर', 'स्वर्ण धूलि', 'गुंजन', 'शेखर : एक जीवनी', और 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद थे। मैं तब दसवीं कक्षा में प्रवेश कर रहा था। गर्मी की छुट्टी में मैंने जब यह संग्रह पढ़े तो लगा, कविता एक बहुत ही अदभुत चीज है, शायद तभी से शब्दों से खेलने की कुछ इच्छा जागी होगी।**"[1]

अशोक वाजपेयी के अन्दर कविता लेखन के बीज प्रथम गणतंत्र दिवस के अवसर पर यानी सन् 1950 ई. में लिखी प्रथम चार पंक्तियों की तुकबंदियों में पनपते हैं। तत्पश्चात उनका कविता लेखन के प्रति अधिक लगाव होता गया। उनकी पहली कविता द्वारिका प्रसाद मिश्र के सम्पादन में प्रकाशित होने वाली हिन्दी की 'सारथी' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई है। इस संदर्भ में अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि "**जहाँ तक पहली कविता का सवाल है वह, यदि मुझे ठीक याद है तो, द्वारिका प्रसाद मिश्र की पत्रिका 'सारथी' में छपी थी। इस पत्रिका में उन दिनों मुक्तिबोध श्रीकांत वर्मा जैसे लोगों की रचनाएँ छपती थीं।**"[2] अशोक वाजपेयी की प्रथम कविता 'सारथी' में प्रकाशित होने के पश्चात एक कविता मुम्बई से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'धर्मयुग' में प्रकाशित होती है। जब अशोक वाजपेयी की ये कविताएँ प्रकाशित होती हैं तब इनकी उम्र महज तेरह वर्ष की थी।

---

1 वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ - 130।

2 वही, पृष्ठ – 129।

अशोक वाजपेयी सन् 1956 ई. में मुक्त छंद की कविता लिखते हैं जो भोपाल से प्रकाशित होने वाली 'वसुधा' नामक साहित्यिक पत्रिका में प्रकाशित होती है। उस समय 'वसुधा' पत्रिका का सम्पादन कार्य हरिशंकर परसाई संभाल रहे थे। सन् 1957 ई. में अशोक वाजपेयी की कविताएँ हिन्दी की विभिन्न बड़ी पत्रिकाएँ कल्पना, ज्ञानोदय, सुप्रभात, राष्ट्रवादी और युग-चेतना आदि में प्रकाशित होने लगी थीं। सन् 1958 ई. में रघुवीर सहाय के संपादन में प्रकाशित होने वाली 'कल्पना' पत्रिका में उनकी कविताएँ प्रकाशित होती हैं। विभिन्न पत्रिकाओं में कविताओं के अनवरत प्रकाशन से अशोक वाजपेयी एक कवि के रूप में अपनी महत्वपूर्ण छवि अर्जित करते हैं। अशोक वाजपेयी ने समवेत, अनामिका, समास, बहुवचन आदि विभिन्न पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य भी किया। इसलिए अशोक वाजपेयी को एक कुशल संपादक के रूप में भी जाना जाता है। अशोक वाजपेयी जब कक्षा दसवीं में अध्ययन कर रहे थे तब एक हस्तलिखित 'अनामिका' नामक पत्रिका का सम्पादन उन्होंने किया तथा अपने साक्षात्कार में वह कहते हैं कि ''**यानी जब मैं तेरह वर्ष का था मेरी एक कविता मुंबई के साप्ताहिक 'धर्मयुग' में छपी थी। बाद में जब मैं दसवीं कक्षा में आया तो मैं स्कूल से निकलने वाली पत्रिका 'अनामिका' का संपादक बना। यह पत्रिका पहले हस्तलिखित रूप में निकलती थी लेकिन मेरे संपाकत्व के साथ इसका छपकर प्रकाशित होना तय हुआ।**''[1]

अशोक वाजपेयी न केवल एक कवि है, संपादक हैं, बल्कि एक प्रखर आलोचक भी हैं। सन् 1957 ई. में उनकी विभिन्न कविताएँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। सन् 1957 ई. में रमेशदत्त दुबे और प्रवोध कुमार के सहयोग से एक 'समवेत' नामक पत्रिका का सफल प्रकाशन करते हैं। 'समवेत' पत्रिका को प्रकाशित करने में इन सभी साथियों का काफी सहयोग रहा। इस सन्दर्भ में आपने साक्षात्कार में वह कहते हैं कि ''**मुझे तालमेल में कभी विशेष कठिनाई नहीं हुई। शुरू से ही तीनों**

---

1. वाजपेयी, अशोक मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998, पृष्ठ – 129।

करना आदत सी बन गया । आपको याद दिलाऊँ कि 'कल्पना', 'युगचेतना', 'कृति', 'ज्ञानोदय' आदि में कविताएँ 1957-58 में छपना शुरू हुई, पहला आलोचना लेख भी तभी छपा और 1957 में ही अन्य मित्रों के साथ मैंने 'समवेत' का संपादन किया । तब से अब तक एक तरह का अखण्ड कीर्तन ही समझिये । सृजन करना, उसे समझना-समझाना और परिवेश तैयार करना मुझे एक-दूसरे से बिलकुल जुड़े काम लगते हैं ।''[1]

कवि, लेखक या आलोचक होना एक सामान्य बात है लेकिन एक संपादक होना, बहुत ही जटिल कार्य है क्योंकि कवि और आलोचक तो अपनी रचना तक ही सीमित रहता है लेकिन संपादक को पत्रिका की सभी रचनाओं से गुजरना होता है । उस समय जब आलोचना अपने शिखर पर हो तब संपादक को बहुत ही गंभीरतापूर्वक अपने दायित्व का निर्वाहन करना होता है । अशोक वाजपेयी अपने संपादकत्व की भूमिका को बखूवी निभाते नजर आते हैं । अशोक वाजपेयी संपादन कार्य की यात्रा 'अनामिका' हस्तलिखित पत्रिका से शुरू करते हैं और 'समवेत', 'पूर्वग्रह' से होते हुए 'पहचान', 'समास' और 'बहुवचन' के साथ-साथ 'कविता एशिया' के संस्थापक संपादक के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । अशोक वाजपेयी समकालीन हिन्दी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर होते हुए भी एक प्रखर आलोचक हैं । विभिन्न विद्वानों ने तो यह तक माना है कि अशोक वाजपेयी की आलोचना उनकी कविताओं से अधिक सक्रिय रही है । अशोक वाजपेयी के यहाँ कविता और आलोचना दोनों कर्म एक साथ चलते हैं । जैसे कविता की शुरूआत सन् 1957-58 ई. से होती है तभी से आलोचना की भी शुरुआत होती है ।

---

1. वाजपेयी, अशोक मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1998, पृष्ठ – 32 ।

अशोक वाजपेयी को विभिन्न पुरस्कार प्रदान किये गए हैं जिनमें निम्न हैं-

- साहित्य अकादमी पुरस्कार, सन् 1994 ई.
- दयावती मोदी कवि शिखर सम्मान, सन् 1994 ई.
- ऑफिसर ऑफ़ द ऑर्डर ऑव क्रास, (पोलिश सरकार) सन् 2004 ई.
- ऑफिसर ऑफ़ द ऑर्डर ऑव द आर्ट्स एण्ड लैटर्स, (फ्रेंच सरकार) सन् 2005 ई.

1. 1 विभिन्न काव्य-संग्रह एवं रचनात्मक प्रक्रिया

समकालीन हिन्दी कवियों में अशोक वाजपेयी की काव्य यात्रा 'शहर अब भी सम्भावना है' (1996) से प्रारंभ होती है और विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए 'नक्षत्रहीन समय में' (2016) तक की यात्रा तय करती है । अभी भी अनवरत रूप से जारी है । अशोक वाजपेयी के अब तक 15 काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें निम्न हैं –

1. शहर अब भी सम्भावना है, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सन् 1996 ई. ।
2. एक पतंग अन्नंत में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1984 ई. ।
3. अगर इतने से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1986 ई. ।
4. तत्पुरुष, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1986 ई. ।
5. कहीं नहीं वहीं, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1991 ई. ।
6. बहुरि अकेला, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1992 ई. ।

7. आविन्यो, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष सन् 1995।

8. अभी कुछ और, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 1998 ई.।

9. समय के पास समय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2000 ई.।

10. इबारत से गिरी मात्राएँ, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, सन् 2002 ई.।

11. कुछ रफू कुछ थिगड़े, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004 ई.।

12. विवक्षा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004 ई.।

13. दुख चिट्ठी रसा है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2008 ई.।

14. कहीं कोई दरवाजा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2013 ई.।

15. नक्षत्रहीन समय में, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली, सन् 2016 ई.।

1. **'शहर अब भी सम्भावना है'** :- 'शहर अब भी सम्भावना है' समकालीन हिंदी कविता के वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी का प्रथम काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1996 ई. में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से हुआ है। इस काव्य-संग्रह में कुल सत्तावन कविताओं को संगृहीत किया गया है जो अशोक वाजपेयी की 16 से 24 वर्ष के दौरान लिखी गयीं हैं। इस कविता संग्रह की अधिकांश कविताएँ मध्यप्रदेश के एक छोटे से शहर सागर में रचीं गई हैं। इस काव्य-संग्रह में सागर के परिवेश की छवियाँ बखूबी देखने को मिलती हैं। अशोक वाजपेयी का यह काव्य-संग्रह नयी कविता के अंत और साठोत्तरी कविता का प्रस्थान बिंदु है। 'शहर अब भी सम्भावना है' काव्य-संग्रह की कविताओं ने समकालीन हिन्दी कविता में अपनी महत्वपूर्ण जगह बनाई है।

यह वह समय था जब सारे भारतीय जन समुदाय में आजादी के बाद कोई उम्मीद नज़र नहीं आती दीख रही थी। सब के सब कवि लेखक बड़े-बड़े साहित्यकार हताश होकर बैठ गये थे। सबहीं के मन में कुंठा, तनाव, हताशा पनपने लगीं और इन्हीं से युक्त कविताएँ लिखने लगे। भाषा में अस्थिरता, दकियानूसी और सपाटबयानी नज़र आने लगी। तब अशोक वाजपेयी हिन्दी कविता में कुंठा, हताशा आदि जैसा विलाप नहीं करते बल्कि उसी विपरीत समय में कुछ अच्छा करने की जिद करते हैं। जिस समय हिन्दी कविता में प्रेम को अलक्षित कर दिया गया था उस समय अशोक वाजपेयी प्रेम को अपनी कविताओं के माध्यम से पुनर्जीवित करते हैं। इसी सन्दर्भ में 'शताब्दी की बेचैनी का कवि अशोक वाजपेयी' नामक पुस्तक में डॉ. राजेंद्र यादव लिखतें हैं कि 'अकविता के उन्मेषकाल में सन् 1966 में जब हिंदी कविता, कविता से बाहर जाकर भूखी पीढ़ी से शमशानी पीढ़ी तक की सकरी गली का रास्ता नाप रही थी, आलोच्य कवि ने एक आदिम कवि का प्रत्यावर्तन का विवाद करते हुए 'शहर अब भी सम्भावना है' का जयघोष किया था।' अशोक वाजपेयी ने ऐसे भीषण समय में पूरे आत्मविश्वास के साथ एक दुनिया सामानांतर बसाने का साहस अथवा दुस्साहस किया था। 'शहर अब भी सम्भावना है' काव्य-संग्रह में न तो किसी प्रकार का तनाव है और न किसी प्रकार के भयावह समय की चीख। इस काव्य-संग्रह में कवि अपने निजी और सार्वजानिक जीवन की विनम्र आस्था को नवीन दृष्टि से व्यक्त करता है। अशोक वाजपेयी साठोत्तरी हिंदी कविता में उस समय की विपरीत परिस्थितियों और जनता के आक्रोश को नज़रअन्दाज करते हुए जीवन में सब कुछ ठीक हो जाने की सम्भावना की तलाश अपनी कविताओं में करते हुए नजर आते हैं।

'शहर अब भी सम्भावना है' काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी ने अपनी 'आसन्नप्रसवा माँ के लिए तीन गीत' लिखे हैं 'काँच के टुकड़े', 'जीवित जल', 'जन्मकथा'। पहले गीत में माँ को काँच के टुकड़े के समान सुरक्षित माना है। जिस प्रकार काँच सूर्य की किरणों को समेट लेता है उसी तरह तुम हमारे

दुखों को भी अपने हृदय में सहेज लेती हों, क्योंकि तुम्हारे जीवन रूपी खिड़की के आठों कांच सुरक्षित हैं –

"तुम उन सबको सहेज लेती हो

क्योंकि तुम्हारी अपनी खिड़की के

आठों काँच सुरक्षित हैं।"[1]

दूसरे गीत में माँ की तुलना प्रकृति से की है कि प्रकृति कितना कुछ सहन करने के बाद भी हमसे कुछ नहीं कहती वह हमसे कोई शिकायत नहीं करती उसी तरह तुम कितने कष्ट झेलने के बाद भी कुछ नहीं कहती। सुन्दर प्रकृति में खिले फूलों की मानिंद हमेशा मुस्कराती रहती हो -

"तुम्हारे कितने जीवित जल

राहें घेरते ही जा रहे हैं

और तुम हो कि फिर कड़ी हो"[2]

अशोक वाजपेयी को मूलतः प्रेम के कवि माना जाता है। यह सही भी है कि उनकी कविताओं में सिर्फ अपनी प्रेयसी के प्रति ही प्रेम नही है, बल्कि उनकी कविताओं में प्रकृति, मनुष्य और संसार के प्रति अनुराग भी है। संसार के प्रति अनुराग की छवि उनके पहले कविता संग्रह 'शहर अब भी सम्भावना है' में ही प्रतीत होने लगती है। इस संग्रह की कविताओं में 'लौटकर जब आऊँगा', 'पहला चुम्बन', 'प्यार करते हुए सूर्य-स्मरण', 'जब हम प्यार करते हैं', स्टेशन पर विदा', 'उसके बाद', 'सम्भावना, 'सूर्यास्त'

---

1. त्रिपाठी, अरविन्द. अशोक वाजपेयी प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2014 ।

2. वही, पृष्ठ – 17 ।

आदि हैं। जब समकालीन हिन्दी कविताओं में प्रेम के लिए कोई जगह नहीं बची थी उस समय अशोक वाजपेयी अपनी नवीन सृजनात्मकता को कविताओं में उद्घाटित करते हैं। सन् 1960 के पश्चात् लिखी जा रही तनाव ग्रस्त कविताओं के बरक्स उस समय और समाज से अलक्षित हो गए प्रेम को अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं के मार्फ़त नवीन उद्भावनाओं के साथ समकालीन हिन्दी कविता संसार में महत्पूर्ण जगह बनाते हैं।

2. **'एक पतंग अनंत में' :-** 'शहर अब भी सम्भावना है' (सन् 1966 ई.) के अठारह वर्षों पश्चात् अशोक वाजपेयी का 'एक पतंग अनंत में' दूसरा काव्य-संग्रह है, जो सन् 1984 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह की कविताओं में कवि ने तत्कालीन समय में मनुष्य जीवन के रहस्य की जिज्ञासाओं को अपनी गहन अनुभूति और संवेदनात्मक दृष्टि से कविता में प्रकट किया है। इस काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी की काव्य की व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। इस काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी ने अपने जीवन के सुख-दुःख और पारिवारिक संबंधों को गहन अनुभूति के साथ व्यक्त किया है। अशोक वाजपेयी ने इस काव्य-संग्रह की कविताओं को चार खण्डों में विभाजित किया है जिनमें क्रमशः 'अमर मेरी काया', 'शारीर का अनंत स्वप्न', 'पेड़ के पीछे आदमी' और 'दूसरे आदमी का सामना' हैं। अशोक वाजपेयी के 'एक पतंग अनंत में' काव्य-संग्रह को अच्छी तरह से समझने के लिए इस काव्य-संग्रह के सन्दर्भ में रघुवीर सहाय द्वारा की गयी टिप्पणी सहायक सिद्ध होगी वे लिखते हैं कि **"एक पतंग अनंत में' कई बार पढ़ गया हूँ। हर बार एक नई कविता पर ध्यान ठहरा है जिस पर पहले नहीं ठहरा था। यह हर बार कवि से नई पहचान होने जैसा है। वास्तव में ये कविताएँ पाठक से धीरे-धीरे खुलती हैं। इनमें अभी तक हिन्दी कविता की प्रतिध्वनियाँ भी हैं, परन्तु हर प्रतिध्वनि में एक नई गूँज है जो कवि की अपनी है। जीवन के रहस्य की जिज्ञासा इन कविताओं में प्रकट हुई है, परन्तु जिज्ञासा का आधार कविता के रागात्मक सम्बन्ध से उसके**

संसार से ही मिला है, किसी बाहरी प्रेरणा से नहीं । रूप-रस-गंध इन कविताओं में उस निर्वैयक्तिक संवेदना का प्रमाण मिलता है जो अपने अनुभव से तटस्थ होकर अपने को देखने अर्थात कविता करने के लिए जरुरी है ।"[1]

अशोक वाजपेयी की कविताओं को हम जितनी बार पड़ेंगे हर बार एक नवीन अर्थ और ताजी भाषा का रसास्वादन पाएँगे । किसी कवि की पहचान हम उसकी कविता की संवेदना से कर सकते हैं । अशोक वाजपेयी की कविता में सामाजिक सरोकार मुख्य रूप से रहा है । तमाम क्रांतियों की असफलताओं के बावजूद भारतीय समाज में जब अमानवीयता का दौर अपनी चरम स्थिति में था और समकालीन हिन्दी कविता में मनुष्यता नष्ट होती नज़र आ रही थी तब अशोक वाजपेयी समकालीन हिन्दी कविता में अलक्षित हो गये मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं की पड़ताल कर उन्हें पुनर्स्थापित करते हैं-

"हर बार हमें अन्दर से किसी पुकारकर
खाने के लिए बुलाया
हर बार मिली हमें अन्दर
बैठी कमरे की मद्धिम रोशनी में
अपने प्राचीन चेहरे के साथ
निश्शब्द माँ !"[2]

3. **'अगर इतने से'** :- 'अगर इतने से' अशोक वाजपेयी का तीसरा काव्य-संग्रह है, जिसका प्रकाशन सन् 1986 ई. में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है । इस काव्य-संग्रह में 72 कविताओं को संकलित किया है, जिन्हें तीन खण्डों में विभाजित किया गया है । इन खण्डों में 'तोतों से बची पृथ्वी',

---

1. प्रजापति, अमृत एस.. अशोक वाजपेयी एक : अध्ययन. पी.एचडी शोधप्रबंध. गुजरात : गुजरात विश्वविद्यालय, 2002, पृष्ठ-75 |
2. वाजपेयी, अशोक. एक पतंग अनंत में. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 1984, पृष्ठ - 22 ।

‘खिलौने की तरह उठायेगी मृत्यु’ और ‘प्रेम के लिए जगह’ हैं। इस काव्य-संग्रह की कविताएँ प्रकृति के सौन्दर्य से जुडी हुई कविताएँ हैं। पृथ्वी से जुडी हुई से मेरा आशय सिर्फ पृथ्वी के बारे में नहीं अपितु पृथ्वी पर समस्त सौन्दर्य वस्तुओं से है जिसमें मनुष्य सबसे सुन्दर है। मनुष्य की सुन्दरता पर सुमित्रानंदन पन्त अपनी कविता में लिखते हैं ‘सुन्दर हैं विहाग / सुमन सुन्दर / मानव! तुम सबसे सुन्दरतम।’ अशोक वाजपेयी भी अपनी कविताओं में प्रकृति की सुन्दरता के साथ मनुष्य रूपी सुन्दरता को रचते हैं। इस काव्य-संग्रह की कविताओं को पढने से ऐसा नहीं लगता की हम कोई कविता पढ़ रहे हैं बल्कि जैसे किसी से संवाद कर रहे हैं। यह गद्य में ही संभव हुआ है, जिसे अशोक वाजपेयी अपनी कविता में प्रयोग करते हैं। इससे कविता को पढने और समझने के स्तर से सुविधा प्रदान करते हैं। प्रकृति, प्रेम और मनुष्य जीवन से आसक्ति इस काव्य-संग्रह में पहले की अपेक्षा और अधिक सघन होती दिखाई पड़ती है।

अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह की कविताओं में एक ओर जहाँ नश्वरता का बोध है, वहीं दूसरी ओर निरंतरता का भी बोध है। इस संग्रह की कविताओं को अशोक वाजपेयी शब्दों और सौन्दर्य के रूप में प्रयुक्त करते हैं। तो दूसरी ओर प्रकृति और मनुष्य के संबंधों में अनश्वरता को स्थापित करते हैं। इस काव्य-संग्रह में वह प्रकृति और मनुष्य के अस्तित्व पर लगातार बढ़ रहे खतरों से आगाह कराते हैं तथा उन खतरों से निपटने के उपाय भी तलाश करते हैं। आदिकाल से ही प्रकृति और मनुष्य का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध रहा है लेकिन वह सम्बन्ध अब धीरे-धीरे टूटने की कगार पर आ गया है। तब अशोक वाजपेयी की कविताएँ उन टूटते हुए संबंधों को बचाए रखने का आह्वान करती हैं। इस काव्य-संग्रह की कविता ‘अगर इतने से’ में वह लिखते हैं-

“आत्मा के अंधेरों को

अपने शब्दों की लौ ऊँची कर

अगर हरा सकता

तो मैं अपने को

रत-भर

एक लालटेन की तरह जला रखता

अगर इतने से काम चल जाता।"[1]

4. **'तत्पुरुष'** :- 'तत्पुरुष' अशोक वाजपेयी का चौथा काव्य-संग्रह है, जो सन् 1986 ई. में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह की कविताओं में गहन जीवनाशक्ति और अदम्य जिजीविषा दृष्टिगोचर होती है। अशोक वाजपेयी का यह काव्य-संग्रह अपनी एक अलग पहचान लेकर समकालीन हिन्दी कविता संसार में प्रवेश करता है। समकालीन हिन्दी कवियों में रघुवीर सहाय, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल', विजयदेव नारायण साही, श्रीकांत वर्मा, कुँवर नारायण, केदारनाथ सिंह, अरुण कमल, राजेश जोशी, मदन कश्यप आदि कविता लिख रहे हैं वहीं अशोक वाजपेयी की कविता उन तमाम सरीखे कवियों से भिन्न रही है। इस काव्य-संग्रह की कविताओं के बारे अशोक वाजपेयी स्वयं कहते है कि- "**कविता में यह और वह का तनाव पुराना है–कभी खेल-खेल में और कभी गहरी विकलता से कविता दोनों को विन्यस्त करती है। कई बार आत्मसंवोधन होते हुए भी कविता का काम, भाषा के सहज न्यास से, दूसरे के बिना नहीं चलता। इस संग्रह में पिछला रुझान शायद कुछ अधिक स्पष्ट हुआ है–सब कुछ के पड़ोस में होने का। शब्द हमें एक दूसरे के पड़ोस**

1. वाजपेयी, अशोक. अगर इतने से. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 1986, पृष्ठ – 30।

में रख देते हैं-अनंत के पड़ोस में, मृत्यु और काल के पड़ोस में, इसको उसके पड़ोस में, सहज मान्य को सर्वथा अप्रत्याशित के पड़ोस में, पड़ोस में सभी कुछ तत्काल है–सभी तत्पुरुष।"[1]

समकालीन हिन्दी कविता में जिन शब्दों और भाषा का प्रयोग हो रहा है उसमें से कुछ अलग शब्दों का चयन करना अशोक वाजपेयी की प्रमुखता है। अशोक वाजपेयी किसी बनी-बनाई परम्परा का निर्वाह नहीं करते। वह अपने कविता संसार की भाषा ऐसे शव्दों से निर्मित करते हैं, जो समकालीन हिंदी कविता के कवियों से भिन्न है। वह शब्द को मानवीय उपस्थिति के रूप में स्वीकार करते हैं। शब्द हमारे होने का प्रमाण हैं। यदि शब्द न होंगे तो हमारा भी वजूद नही रहेगा। कविता न केवल एक विचार है, बल्कि शब्दों से रची भाषा का अद्भुत संसार है। जिसके माध्यम से हम वहाँ भी पहुँच सकते हैं, जहाँ कोई नही पहुँचता।

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में शब्दों के द्वारा अनंत, मृत्यु और काल की गहराई में जाते हैं और वहाँ अपनी भाषा में कविता रचते हैं। अशोक वाजपेयी की कविताएँ व्यक्ति के मृत होने का प्रमाण नहीं बल्कि उसके जीवित रहने का प्रमाण है। इस संग्रह की कविताएँ देवताओं को महत्व देने के बजाये मनुष्य के दुःख और संघर्ष की साक्षी हैं। वह अपनी कविता में अपने शब्दों में थोडा अपना जीवन भी लिख जाता है और यह कार्य अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में बहुत ही शिद्दत और जिम्मेदारी के साथ व्यक्त करते हैं –

"कि जो जगह लिये हैं

उसे जगह देना चहिए

शब्द किसी की जगह नहीं लेते।

---

1. प्रजापति, अमृत एस.. अशोक वाजपेयी एक : अध्ययन. पी.एचडी शोधप्रबंध. गुजरात : गुजरात विश्वविद्यालय, 2002, पृष्ठ-128 |

हमारे-तुम्हारे लिए

जगह खोजते-बनाते हैं,

सारी धकापेल के बावजूद

जगह बचा रखते हैं।"[1]

5. **'कहीं नहीं वहीं'** : - 'कहीं नहीं वहीं' अशोक वाजपेयी का पाँचवाँ काव्य-संग्रह है, जो सन् 1991 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। अशोक वाजपेयी को 'कहीं नहीं वहीं' काव्य-संग्रह के लिए सन् 1994 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से नवाजा गया। इस काव्य-संग्रह में छोटी-बड़ी एक सौ दो कविताओं को संग्रहीत किया गया है। इन कविताओं को चार विभागों में विभाजित किया गया हैं जिनमें अवसान, श्रृंगार, अवकाश और मुक्ति हैं। इस काव्य-संग्रह की कविताओं में अशोक वाजपेयी एक ओर जहाँ जीवन की समस्याओं से मुक्ति की तलाश करते हैं, वहीं दूसरी ओर उन तमाम समस्याओं से संघर्ष करते हुए भी दिखाई देते हैं। अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह में जीवन के प्रति गहन आशक्ति दृष्टिगोचर हुई है। लेकिन साथ में मृत्यु का बोध भी है। इस संग्रह की कविताओं में मृत्यु का अंत है तो उसके बरक्स जीवन जीने की जिजीविषाएँ भी हैं। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में एक ओर लिखते हैं कि 'एक बार जो ढल जायेंगे / शायद ही फिर खिल पायेंगे।' वहीं दूसरी ओर यह भी लिखते हैं कि 'अंत के बाद / हम समाप्त नहीं होंगे-/ यहीं जीवन के आसपास मंडराएंगे- / यहीं खिलेंगे गंध बनकर।' अर्थात् वह कविता में प्रश्न भी करते हैं और उन प्रश्नों के उत्तर भी कविता में ही तलाश करते हैं। इसी सन्दर्भ में प्रकाश लिखते हैं कि "**'कहीं नहीं वहीं' काव्य-संग्रह की कविताओं में अंत के पश्चात्**

---

1. वाजपेयी, अशोक. तत्पुरुष. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 1986, पृष्ठ – 53।

इसी धरती पर वापस लौट आने की आध्यात्मिक चिंता है । इन कविताओं का स्वाद कितना दार्शनिक चिंताओं से लवरेज हो उनकी भावभूमि अन्ततः जीवन और संसार के प्रति अनुरागपूर्ण है ।"[1] अशोक वाजपेयी की कविताओं में जीवन के अंत होने का एहसास है और उसके बाद भी इसी संसार में बने रहने का भरोसा भी है। यह भरोसा शब्दों में, भाषा में, कविता में भी है। अशोक वाजपेयी काव्य-संग्रह के दूसरे संस्करण की भूमिका में लिखते हैं कि 'मृत्यु को आसक्ति से समझने, रति की सघनता को खोजने-पाने, अपने पासपड़ोस को शब्दों के माध्यम से देखने-टटोलने और कविता में गद्य से खिलवाड़ करने की जो कोशिश इस संग्रह में है।' अशोक वाजपेयी का ऐसा कोई भी काव्य संग्रह नहीं है जिसमें प्रेम की कविता न हो। इस संग्रह की कविताओं में भी प्रेम की विभिन्न अभिव्यंजनाएँ देखने को मिलती हैं। 'कहीं नहीं वहीं' काव्य-संग्रह की 'वह कैसे कहेगी' कविता में लिखते हैं कि -

"वह कैसे कहेगी हाँ-

हाँ कहेंगे

उसके अनुरक्त नेत्र

उसके उदग्र-उत्सुक कुचाग्र

उसकी देह की चकित धूप

उसके आर्द अधर

कहेंगे हाँ-

---

1. प्रकाश, कविता का अशोक - पर्व. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन् 2015, पृष्ठ – 66 |

वह कैसे कहेगी हाँ ?"[1]

इस काव्य-संग्रह में शिल्प की दृष्टि से देखा जाये तो अशोक वाजपेयी समकालीन हिन्दी कविता में रूढ़ हो गये शिल्प के समक्ष बौद्धिक हस्तक्षेप करते हैं और कविताओं को गद्यात्मक रूप में लिखने की कोशिश करते हैं । अशोक वाजपेयी के यह वैचारिक शिल्पगत प्रयोग उनकी कविताओं में नवीनता के साथ ताजगी एवं जीवन्तता प्रदान करते हैं।

6. **'बहुरि अकेला'** : - 'बहुरि अकेला' अशोक वाजपेयी का 6वाँ काव्य-संग्रह है। जिसका प्रकाशन सन् 1992 ई. में वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से हुआ है । इस काव्य-संग्रह की कविताओं में भारतीय संगीतकार कुमार गन्धर्व की मृत्यु के पश्चात् उन्हीं पर लिखी गईं कविताएँ संगृहीत की गईं हैं, जिसमें कुमार गन्धर्व के गायन से संबंधित विभिन्न कविताएँ हैं । इन कविताओं को 'कुमार गन्धर्व के विदा गीत' के नाम से अभिहीत किया गया है।

अशोक वाजपेयी की अधिकांश कविताएँ प्रेम, मृत्यु और जिजीविषा पर केन्द्रित हैं तो यह नही कि अशोक वाजपेयी मात्र प्रेम और मृत्यु के ही कवि हैं बल्कि उनकी अब तक के तमाम काव्य-संग्रहों में प्रेम, मृत्यु और जिजीविषा के साथ प्रकृति और समाज के सच की अभिव्यक्ति भी देखने को मिलती है। अशोक वाजपेयी न केवल प्रेम और मृत्यु के कवि है बल्कि जीवन के प्रति अनुराग के भी कवि हैं। 'बहुरि अकेला' काव्य-संग्रह की कविताएँ अशोक वाजपेयी के सबसे प्रिय शास्त्रीय संगीतकार कुमार गन्धर्व के अवसान हो जाने पर मृत्यु से जुडी अवसादग्रस्त कविताएँ हैं । इन कविताओं को पढने से हम मृत्यु से साक्षात् तो करते ही हैं साथ ही मृत्यु के भय से भी मुक्त होते हैं। अशोक वाजपेयी को कुमार गन्धर्व से इस नश्वर संसार को जानने, समझने, साहित्य-सृजन और संगीत से शांति का अनुभव प्राप्त हुआ है । कुमार गन्धर्व की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय के लिए अशोक वाजपेयी एक गहन अवसाद में डूब गए थे और

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं नहीं वहीँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 1995, पृष्ठ – 71 |

मृत्यु के दार्शनिक पक्षों को कविता में प्रस्तुत करने लगे। इस अवसादग्रस्त स्थिति में भीअशोक वाजपेयी अपना कवि-कर्म नहीं छोड़ते हैं। अवसाद से ग्रस्त अशोक वाजपेयी कुमार गन्धर्व की स्मृतियों को भुला नहीं पा रहे थे। एक कवि होने के नाते वह उन्हें अपनी कविताओं में श्रद्धांजलि ज्ञापित करते हैं। 'गाते-गाते रोज़ मरता हूँ' कविता में वह लिखते हैं-

"वे बोले मैं तो सबसे नश्वर कला का साधक हूँ : गाते-गाते रोज़ मरता हूँ।

जिस कुमार गन्धर्व ने जो तिलक कामोद गाया वे दोनों मर चुके।

कल फिर तिलक कामोद गाया जाएगा और कुमार गन्धर्व ही गाएँगे पर वे नहीं

जो एक बार हो चुका संगीत में और उनके यहाँ,

वह फिर होता है और उन्हीं के यहाँ, पर वही नहीं।"[1]

अशोक वाजपेयी और कुमार गन्धर्व के बीच महज व्यक्तिगत सम्बन्ध ही नहीं थे बल्कि उनका सम्बन्ध दो सिद्धहस्त कलाकारों का भी था। यही कारण रहा है कि कुमार गन्धर्व की मृत्यु के पश्चात् बहुत दिनों तक अशोक वाजपेयी उनकी मृत्यु के अवसाद से उबर नहीं पाए। जिसकी छवियाँ उनकी कविताओं में बखूबी देखने को मिलती हैं। इस काव्य-संग्रह में उस अनुपस्थित को भी उपस्थित किया गया है, जो अब इस दुनिया में नहीं है। यानि कि अशोक वाजपेयी कुमार गन्धर्व की अनुपस्थिति की पूर्ति अपनी कविता रचकर पूर्ण करते हैं। 'बहुरि अकेला' काव्य-संग्रह के सन्दर्भ में अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि "**मैंने कुमार गन्धर्व के लिए एक विदागीत लिखना शुरू किया जो कुल इक्कीस कविताओं का एक सिलसिला है। वे लगभग एक महीने के दौरान भोपाल के घर, ग्वालियर के सर्किट हाउस और दिल्ली जाती एक ट्रेन में लिखी गयीं। 8 अप्रैल 1992 कुमार गन्धर्व का,**

1. वाजपेयी, अशोक. बहुरि अकेला. नई दिल्ली वाणी प्रकाशन, 1992, पृष्ठ - 70 |

उनके दिवंगत होने के बाद, पहला जन्मदिन था। यह विदागीत उस अवसर पर प्रकाशित हुआ था।"[1]

इस काव्य-संग्रह में कुमार गन्धर्व की उन स्मृतियों को उकेरा गया है जो वाजपेयी जी के मस्तिष्क में बार–बार कौंध आती हैं। उन स्मृतियों को कविता में व्यक्त करने से अशोक वाजपेयी अपने आप को रोक नहीं पाते। इस काव्य-संग्रह के सन्दर्भ में रेवती रमण लिखते हैं कि "**'बहुरि अकेला' में जिस आत्मीय क्षति का एकांत शब्द निर्झर बना है, उसमें भावुकता की मर्यादा जगह-जगह दुखातिरेक से छिन्न-भिन्न हुई है। इससे कविता का अलंकरण के स्तर पर क्षीणकाय भले हुई हो, संवेदना और अनुभूति की तीव्रता और प्रगाढ़ता निश्चित ही विश्वसनीय हुई है।"**[2] मृत्यु जीवन का एक अकाट्य सत्य है कवि इस बात से परिचित है। इसलिए वह मृत्यु पर ढेरों कविताएँ लिख चुके हैं। वह मृत्यु को अस्वीकार नहीं करते बल्कि हर समय उसके स्वागत में रहते हैं। इस तरह 'बहुरि अकेला' काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी ने कुमार गन्धर्व को श्रद्धांजलि स्वरुप जो कविताएँ लिखी है, वह बहुत ही मार्मिक तो हैं ही साथ में मृत्यु के बहाने जीवन की गहन पड़ताल भी करती हैं।

7. **'आविन्यो'** : - 'आविन्यो' अशोक वाजपेयी का सातवाँ काव्य-संग्रह है। जो सन् 1995 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस काव्य-संग्रह की रचना फ्रांस के एक प्राचीन शहर 'आविन्यो' के ईसाई मठ 'ला शत्रूज' में रहकर की गई थी, जो फ्रांस का एक कला केंद्र है। इस काव्य-संग्रह की कविताओं की रचना मात्र उन्नीस दिनों में की गई थी, जो अशोक वाजपेयी की अथक

---

1. वाजपेयी, अशोक. बहुरि अकेला. नई दिल्ली वाणी प्रकाशन, 1992, पृष्ठ - 27 |

2. प्रजापति, अमृत एस.. अशोक वाजपेयी एक : अध्ययन. पी.एचडी शोधप्रबंध. गुजरात : गुजरात विश्वविद्यालय, 2002, पृष्ठ–212|

सृजनशीलता का प्रमाण हैं। इस काव्य-संग्रह की कविताएँ अशोक वाजपेयी की आध्यात्मिक संवेदना-कौशल के विस्तार की भी परिचायक हैं, जिसमें देशकाल के परिवर्तन होने के पश्चात् भी उनकी मूल संवेदना भारतीय ही रही है। इनका पिछला काव्य-संग्रह 'बहुरि अकेला' कुमार गन्धर्व की मृत्यु हो जाने पर लिखी गईं कविताओं में एक गहन अवसाद से ग्रस्त दिखाई देता है लेकिन इस संग्रह की कविताओं में अवसाद की गहनता कम है। इस काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी ने कविता के आध्यात्मिक केंद्र में मनुष्य और प्रकृति को स्थापित करने का प्रयास किया है। जो कि उसकी बुनावट और कविता की भाषा के द्वारा ही संभव हो सकी है। चूँकि रचनास्थल फ्रांस का शहर आविन्यों है। यहीं पर चौदहवीं शताब्दी में बने मकान में रहकर कविताओं की रचना की गई है जहाँ पर ईसाई मठ हैं। उन ईसाई मठों में गूँजती प्रार्थनाएँ अशोक वाजपेयी को गहरे आध्यात्मिक में डूबने के लिए विवश करती हैं। इस काव्य-संग्रह की कविताओं में आध्यात्मिकता के सन्दर्भ में प्रकाश लिखते हैं कि "**आविन्यों की कविताओं के अध्यात्म को समझने-बूझने के लिए उसके रचनास्थल के अध्यात्मिक स्थापत्य को महसूस करना जरूरी है, क्योंकि उस स्थल के एकांत मौन का स्थापत्य 'आविन्यों' की कविताओं में बहुत गहरे तक धँसा हुआ है।**"[1] इस काव्य-संग्रह की कविताओं में भी प्रेम, मृत्यु, परिवार, पड़ोस आदि को समाहित किया गाया है। इस संग्रह की कविताओं में प्रेम में विरह का भय, जीवन में मृत्यु का भय बार-बार सताता है-

"चौदहवीं शताब्दी के अपने इस कमरे से

जब मैं सामने की ओर झाँकता हूँ

तो सामने के चैपल की एक हमेशा खुली खिड़की से

---

1. प्रकाश, कविता का अशोक - पर्व. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2015, सन् पृष्ठ – 67।

लगता है दो आँखे

एकटक घूर रही हैं

बिना पहचाने मैं उन आँखों को

जिन्हें शायद मैं दिन-दहाड़े एक दु:स्वप्न में देखता हूँ

नाम देना चाहता हूँ : ईश्वर ।

...

जो भी कोई आता है

मैं अपने भय का द्वार खोलकर

उससे पूछना चाहता हूँ : ईश्वर ?"[1]

8. '**अभी कुछ और**' :- 'अभी कुछ और' सन् 1998 में प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित अशोक वाजपेयी का आठवाँ काव्य-संग्रह है। इस काव्य संग्रह में सन् 1995 के बाद दो वर्षों में लिखी गई 63 छोटी-बड़ी कविताओं को संगृहीत किया गया है। इस काव्य-संग्रह की कविताओं में एक अथक कवि की जिजीविषा तो दृष्टिगोचर होती ही है साथ में एक कवि के सयाने होने का प्रभाव भी है। क्योंकि अशोक वाजपेयी एक लंबे अरसे से कविता रचना कर रहे हैं। अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह के शीर्षक से स्पष्टतः जाहिर होता है कि वह उम्र के चाहे जिस पड़ाव पर हों कविता के प्रति आसक्ति कम नहीं होने वाली। वे ऐसे कवि नहीं जो थक-हारकर बैठ जायें। वह कविता को ही अपना जीवन मानते हैं। जब तक इस पृथ्वी पर जीवन है तब तक कविता भी जीवित रहेगी। यह व्यक्तिगत धारणा है लेकिन

---

1. वाजपेयी, अशोक. आविन्यों. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 1995, पृष्ठ – 29।

कविता तो तब भी जीवित रहती है जब हम भी नहीं रहते। कविता हर समय रहती है लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि कवि उसको किस भाषा और किस समय में किस प्रकार रचता है। अशोक वाजपेयी का यह काव्य-संग्रह अदम्य जीवनोल्लास से भरी कविताओं का संग्रह है। इसमें अपने जीवन और भाषा को कविता में प्रकट करने का अंदाज पूर्व रचनाओं जैसा ही है। इस काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी जीवन के प्रति आशक्ति को स्वीकार करते नजर आते हैं। अशोक वाजपेयी प्रेम और मृत्यु के साथ जीवन के प्रति आसक्ति के भी कवि हैं। वे मानते हैं यदि जीवन है तो प्रेम है और मृत्यु तो निश्चित है ही इसलिए वह प्रेम, मृत्यु और जीवन सभी को अपनी कविताओं में लिखते हैं।

इस काव्य-संग्रह की कविताओं में अशोक वाजपेयी की जीवन से हार न मानने की जिद और अनछुए पहलुओं को भी छूने को कोशिश जारी रहती है। भाषा की विभिन्न अंर्तध्वनियों में बसी स्मृतियों को वह पुनः अपनी कविताओं में व्यक्त करते हैं-

> **"चीजों के बीच भटकती एक पुकार,**
>
> **सन्नाटे को चीरता एक सहमा-सा अस्फुट गान,**
>
> **पुस्तकों के जाले-भरे कोनों में झिझकता एक शब्द,**
>
> **अपने अवसान की प्रतीक्षा करता एक कवि**
>
> **यही बचता है।**"[1]

9. **'समय के पास समय'** :- 'समय के पास समय' अशोक वाजपेयी का नौवाँ काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 2000 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से हुआ है। इस काव्य-संग्रह में 28

---

1. वाजपेयी, अशोक. अभी कुछ और. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, सन् 1998, पृष्ठ – 14 |

कविताओं को संग्रहीत किया गया है। 'समय के पास समय' काव्य-संग्रह को दो भागों में विभाजित किया गया है। (क) भाग में 'एक लम्बी कविता' इसके अंतर्गत 'शताब्दी के अंत के कगार पर' नाम से सात कविताओं को रखा गया है, जिनमें कवि, कुम्हार, लुहार, बढई, मछुआरा, कबाड़ी और कुंजड़ा हैं। (ख) भाग में 'ताजे धोये दिए-सा' इसके अंतर्गत इक्कीस कविताओं को रखा गया है।

'समय के पास समय' काव्य-संग्रह 20वीं शताब्दी के अंत का घोषणा पत्र है, जिसमें एक शताब्दी का अवसान हो चुका है। लेकिन शताब्दी बीतने के बावजूद ऐसा कोई परिवर्तन नहीं आया जो मनुष्यता के खतरे को बचाए रखने के लिए मददगार साबित हो सके, बल्कि मानव जाति के पतन की गति में तीव्रता आई है। शताब्दी के अंत के कगार पर भी समाज में मनुष्य का मनुष्य हो सकने की मात्र उम्मीद भर रह गई है क्योंकि वर्तमान समय और समाज वैज्ञानिकता के आगोश से बच निकलने की कोशिश तो करता है लेकिन उससे बच पाना नामुमकिन है। आज का युग विज्ञान और संचार का युग है जिसने समय की तो बचत की है लेकिन हमारे संबंधों में दूरियाँ बना दी हैं, जो मनुष्यता के लिए एक खतरा बन गई है। आज हम भूमंडलीकरण और बाजारवाद के चलते समय और समाज से बहुत कुछ पीछे छूटते जा रहे हैं, जिसे बचाना बहुत मुश्किल हो गया है। इस मुश्किल समय में भी कवि अपनी कविता के माध्यम से बचाने का जोखिम उठाता है। समाज उसे स्वीकार करे अथवा न भी करे अशोक वाजपेयी कवि होने के नाते उसे कविता में बचाने का प्रयास करना उचित समझते हैं।

अब जब शताब्दी का अंत होने वाला है अर्थात् 20वीं शताब्दी समाप्त होने वाली थी। समय के साथ समाज में भी ऐसा परिवर्तन आया है कि हम जिस समाज में रहते थे जिस समाज से हमारी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी उन्हें समाज और साहित्य दोनों ने ही अलक्षित कर दिया है। समकालीन हिंदी कविता ने समाज की जिन चीजों को कविता में अलक्षित कर दिया है। अशोक वाजपेयी भी उसी अलक्षित समाज के व्यक्ति हैं। वह अपनी कविताओं में कवि, कुम्हार, लुहार, बढ़ई,

मछुआरा, कबाड़ी और कुंजड़ा के विलुप्त होते अस्तित्व को पुनः स्थापित करते हुए नजर आते हैं। समाज में इनके होने से कोई खतरा नहीं और न कविता को। फिर इन्हें क्यों अलक्षित कर दिया जा रहा है ? अशोक वाजपेयी उसी अलक्षित समाज के व्यक्तियों और वस्तुओं को अपनी कविता का प्रमुख विषय बनाते हैं और कविता में उनकी तलाश करते हैं। साथ ही समाज में उनको पुनः स्थापित करने का महत्वपूर्ण प्रयास करते हैं। समाज में उन्हें जगह मिले यह तो उम्मीद भर की जा सकती है लेकिन हाँ यह जरूर है कि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में उन्हें बचाने व सहेजने का सार्थक प्रयास करते हैं।

20वीं सदी के अंत में मनुष्य की सारी दुनिया अब एक बाजार का रूप धारण कर चुकी है, कल तक जो व्यक्ति कभी-कभार ही बाजार जाता था अब उसका घर ही बाजार बन गया है। अशोक वाजपेयी उस बाजार बन गए घर को कविता में अलग करते हैं और जो मनुष्यता के लिए जरूरी है उसे बचाए रखने का कविता में आह्वान करते हैं। इस काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी 20वीं सदी के महान सत्यों को उजागर करते हैं। समय के परिवर्तन के साथ हमारे समाज ने जिन चीजों को दरकिनार कर दिया है और बाजारवाद की चकाचौंध ने उनकी कमी को महसूस नही होने दिया है, वहाँ अशोक वाजपेयी उनको समाज में बचाने और पुनः स्थापित करने के पक्ष में कविता रचते हैं। अशोक वाजपेयी की कविता का समाज कोई काल्पनिक समाज नहीं है बल्कि कविता ने शब्द और भाषा के द्वारा वास्तविक समाज का सच प्रकट किया है। बीसवीं शताब्दी का अंत हो गया है लेकिन भारतीय समाज और हिन्दी कविता दोनों जिस सामाजिक, पारिवारिक और मूल्यहीनता के चरम छोर पर पहुँच गए हैं। वहाँ अशोक वाजपेयी अपनी कविता के मार्फ़त उसी समाज में पारिवारिक रिश्तों और मूल्यों की पड़ताल करते नज़र आते हैं। जिसे 'लुहार' कविता में उदाहरणार्थ देखा जा सकता है -

"हो सकता है कि इस सदी के ख़त्म होने के पहले ही

मेरी भट्टी बुझ जाए

और उसके साथ लोहे का अपने ही सच में तप कर

अपने सपने में बदलना भी :

पा जितनी मोहलत है, जो भी समय बचा है उसमें

मैं फिर अपनी घन उठाता हूँ

और फिर इस सदी के एक कठोर सच को

पीट-पीटकर एक नये सपने में ढलता हूँ।"[1]

10. **इबारत से गिरी मात्राएँ'** :- 'इबारत से गिरी मात्राएँ' सन् 2002 ई. में वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर,राजस्थान से प्रकाशित अशोक वाजपेयी वाजपेयी का दसवाँ काव्य-संग्रह है। इस काव्य-संग्रह में 2000 से 2001 के दौरान लिखी 70 कविताओं को संगृहीत किया गया है। एक सदी का अवसान हो गया है। अशोक वाजपेयी के जीवन की यात्रा के लगभग 60 वर्ष पूरे होने के बाद लिखी ये कविताएँ उनके पिछले जीवन की स्मृतियों को कविताओं में पुनः तरो-ताजा करती हैं।

अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह की कविताएँ स्मृति और उपस्थिति के अंतराल की पूर्ति करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। इस संग्रह में उनकी काव्यात्मक प्रौढ़ता का भी परिचय मिलता है। इस काव्य-संग्रह की कविताओं से गुजरते हुए लगता है कि कविता व्यक्ति की मनोदशाओं के साथ-साथ अपने अच्छे और बुरे दोनों समय को भी व्यक्त करती है। यहाँ कवि अपने बीते हुए समय को याद करते हुए प्रश्नाकुलता में डूबा हुआ है। यह क्षोभ भी प्रकट करता है कि वह ऐसा समय था जब हमें उनसे कुछ प्रश्न पूछने का अवसर ही नहीं मिला कि हम उनसे कुछ पूँछ सके। उस समय न ऐसी समझ थी और न

1. वाजपेयी, अशोक. समय के पास समय. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2010, पृष्ठ – 19।

साहस। अब जब समय और अवसर दोनों पास हैं तो वह सब नहीं है जिनसे सावालात करने थे। वह हमारी अब स्मृतिमात्र रह गये हैं। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में सवाल करते हैं अपनी माँ से, देवताओं से, पुरखों से, पक्षीयों से, पत्तियों से, नक्षत्रों से और अपने पड़ोसियों से। अब उनके पास कुछ नहीं सिर्फ स्मृतियाँ ही शेष हैं और अकेले पडते जाने का दारूण विलाप जिसे वे अपनी कविताओं में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।

इस संग्रह की कविताओं में प्रेम का चित्रण उतनी व्यापकता के साथ प्रस्फुटित नहीं होता, जितना की अन्य कविता संग्रहों में प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें प्रेम की झलक तो है लेकिन अन्य रचनाओं से कम। जिसे वह कविता में प्रकट करने से अपने आपको रोक नहीं पाते हैं। इस काव्य-संग्रह की अधिकांश कविताओं में अशोक वाजपेयी अपने पिछले अच्छे बुरे समय को याद करते हुए अपनी भाषा में व्यक्त करते हैं-

"वे जानते हैं कि

उनके पास कुछ भी नहीं है,

न प्यार, न नफरत

कुछ कर गुजरने का हौसला भर

जिसमें वे आग लगाते,

आग बुझाते हैं

और फिर चौंतरे पर बैठकर सुस्ताते हैं।"[1]

11. **'कुछ रफ़ू कुछ थिगड़े'** :- 'कुछ रफ़ू कुछ थिगड़े' अशोक वाजपेयी का ग्यारहवाँ काव्य-संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 2004 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से हुआ है। इस काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी की अदम्य जिजीविषा के साथ कविता में नई ताजगी और संयत विवेक दृष्टिगोचर होता है। एक वर्ष की अवधि में लिखी ये कविताएँ अशोक वाजपेयी के काव्य रचना के अंदाज को और अधिक संजीदगी के साथ प्रकट करती हैं। अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह से गुजरते हुए लगता है कि यह समय साम्प्रदायिक ध्वंस का समय था। जिसका वे अपनी कविताओं में विरोध तो करते हैं लेकिन उस आक्रामकता के साथ नहीं जैसा अन्य कवि करते हैं। उनका विरोध प्रकट करने का अंदाज सहजता के साथ ही रहता है। यह उनकी कविता की खासियत है कि वे अपने कविता में आक्रामकता नहीं दिखाते बल्कि प्रेम से उसे सहर्ष स्वीकरते हैं। वे अपनी कविताओं में सांप्रदायिक दंगों के विरोध में प्रतिरोध नहीं जताते बल्कि उस भयानक समय में भी सख्ती के साथ उनके समाधान अपनी कविता में प्रकट करते हैं। 'कुछ रफ़ू कुछ थिगड़े' कविता संग्रह में जीवन के प्रति आशक्ति की कविताएँ भी दृष्टिगोचर होती है जिसमें उनका मानना है कि जीवन जीने के लिए हमें क्या चाहिए ? रोटी, नमक, पानी, घर, कपड़ा आदि इससे हमारा जीवन चल सकता है फिर क्यों हम जरुरत से भी ज्यादा को पाने के लिए सारी ज़िन्दगी आपाधापी में लगे रहते हैं। वह कविता मे लिखते हैं -

"तुम्हें जीने के लिए

कम से कम क्या चाहिए

1. वाजपेयी, अशोक. इबारत से गिरी मात्राएँ. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन, सन् 2002, पृष्ठ - 41।

थोड़ी सी रोटी

कुछ नम, पानी

एक बसेरा, एक दरी, एक चादर,

एक जोड़ी कपड़े, एक थैला, दो चप्पलें,

कुछ शब्द, एकाध पुस्तक, कुछ गुनगुनाहट,

दो चार फूल, मातृ स्मृति

दूर चला गया बचपन

पास आती मृत्यु ।"[1]

अशोक वाजपेयी के लिए कविता लिखना मात्र शब्दों के साथ क्रीड़ा करना नहीं बल्कि कविता को जीना हैं । अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में जीवन के उन तमाम पहलुओं और बिन्दुओं को साकार करते हुए नजर आते हैं जो हमारे समय, समाज और समकालीन कविता से अलक्षित हो गये हैं । कविता में ऐसी अभिव्यक्ति से कवि हमें अचरज में ही नहीं डालता बल्कि उस अलक्षित का भी कविता के माध्यम से साक्षात कराता है । चाहे वह क्रांति का समय ही क्यों न हो । उन्होंने अपनी कविताओं में कोई नारेबाजी नहीं की बल्कि वह उस विपरीत समय में भी सहज भाव से पेश आए हैं । अशोक वाजपेयी की भाषा हमेशा की तरह निजी और समाजधर्मी रही है । उनकी कविता के केन्द्र में साधारण जीवन की आभा और छवियाँ अंकित हुई हैं । अशोक वाजपेयी अपनी कविता में लिखते हैं कि-

---

1. वाजपेयी, अशोक. कुछ रफू कुछ थिगड़े, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2004, पृष्ठ - 17 ।

“सब कुछ गँवा देने के बाद भी जो कुछ बचा रहता है

मैं उसका कवि हूँ :

सूखी नदी की बालू में बहुत नीचे चली गई नमी

आँसुओं में धुँधला गया न सुना जा सका शब्द

पतझडे ठूँठ वृक्ष में धीरे से सिर उठाती हरी अकुलाहट।”[1]

12. ‘**विवक्षा**’ :- अशोक वाजपेयी एक लंबे अरसे से कविता लिख रहे हैं। ‘विवक्षा’ उनका बारहवाँ कविता संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 2006 में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से हुआ। ‘विवक्षा’ काव्य-संग्रह में अशोक वाजपेयी का कविता के प्रति अत्यंत लगाव दृष्टिगोचर होता है, जिसे वह जीवन मानते हैं। कविता के लिए हमेशा सक्रिय रूप से एक ईमानदार सृजनशील कवि के रूप में अशोक वाजपेयी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अशोक वाजपेयी ने साहित्य, संस्कृति और कलाओं के क्षेत्र में भी सक्रिय रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है।

अशोक वाजपेयी के इस संग्रह की कविताओं में अपने समय और समाज की जटिल समस्याओं एवं सच्चाइयों के प्रति सजगता और संवेदना को समझने का प्रयास किया गया है। यह संग्रह प्रेम, मृत्यु, संसार, शब्द, पूर्वज, कलाएँ, घर-पड़ोस, परिवार, समाज, संस्कृति आदि पर केन्द्रित हैं। अशोक वाजपेयी के बारह काव्य संग्रहों से चयनित श्रेष्ठ कविताओं का यह संग्रह हमें वाजपेयी की श्रेष्ठ कविताओं का आस्वादन कराता है। इसकी भूमिका पोलिश विदुषी ‘रेनाता चेकाल्स्का’ ने उनकी कविता के गहन अध्ययन के पश्चात् लिखी है। वे अशोक वाजपेयी की कविताओं एवं अन्य साहित्यिक विधाओं की रचनाओं का अध्ययन करती रहीं हैं। यह काव्य-संचयन अशोक वाजपेयी की श्रेष्ठ कविताओं में प्रेम,

1. वाजपेयी, अशोक. कुछ रफू कुछ थिगड़े, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2004, पृष्ठ – 29।

मृत्यु, समय, समाज, मनुष्य आदि को समझने का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। 'घाटी' कविता मे अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि-

"घाटी मे जाकर गुम हो गई एक पगडंडी

पर वह जो चलते-चलते पगडंडी पर

उसी मे समा गया

घाटी तक पहुँचा वह।"[1]

13. **'दुख चिट्ठी रसा है'** :- 'दुख चिट्ठी रसा है' अशोक वाजपेयी का तेरहवाँ काव्य-संग्रह है, जो सन् 2008 ई. में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। 'दुख चिट्ठी रसा है' काव्य-संग्रह में छोटी बड़ी सभी मिलाकर 97 कविताओं का एक संग्रह है जिसमें एक ओर प्रेम के उल्लास का उजाला है तो वहीं अवसाद से ग्रस्त छाया भी है। इन कविताओं में समाजिक और निजी का द्वैत नहीं दिखता बल्कि अनुभव और विचार दोनों एक साथ ही शब्दों में प्रकट हुए हैं। इस काव्य-संग्रह में 11 प्रेम कविताएँ और 11 अनुपस्थिति पर केन्द्रित कविताएँ भी हैं जो अशोक वाजपेयी की कविता का मुख्य विषय रही हैं, प्रेम, मृत्यु और जीवन। अन्य कविताएँ भी इन्हीं विषयों के इर्द-गिर्द घूमती हुई प्रतीत होती हैं।

अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह में उनकी काव्य यात्रा का अहम पड़ाव दृष्टिगोचर हुआ है। जहाँ पर कविताओं में रागात्मकता का व्यापक विस्तार देखने को मिलता है। जीवन की विफलता का अहसास, दुख, अवसाद और पछतावे के सिवाय कुछ नजर नहीं आता है। वहीं दूसरी तरफ दुख और अवसाद से ग्रस्त समय में भी प्रेम करने की जिद एक वरिष्ठ कवि का प्रेम के प्रति अति लगाव का परिणाम

1. वाजपेयी, अशोक. विवक्षा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2004, पृष्ठ – 23।

है। अशोक वाजपेयी सुख-दुख, कामना और विरक्ति के कवि हैं। उनकी कविता में दुख के अवाक होते जा रहे शब्दों में मौन के संगीत की ध्वनि है। जिस तरह सुख हमारे साथी हैं उसी तरह दुख भी। सुख और दुःख दोनों बारी-बारी से आते हैं। हाँ यह जरूर होता है कि कभी सुख देर तक ठहर जाता है तो कभी दुख। सुख कब आता है यह तो हमें पता नहीं चलता लेकिन दुःख का एहसास जल्दी हो जाता है। हम इस भौतिक संसार में रहने के लिए कहीं भी चले जाये लेकिन सुख-दुःख हमारा पीछा कभी नहीं छोड़ते क्योंकि हमारा शरीर सुख और दुःख का घर है वह अपने घर को छोड़ नहीं सकता। उसे भूल नहीं सकता।

एक अवसादग्रस्त कवि ऐसी जगह जाना चाहता है जहाँ नीरव अंधकार में चट्टाने विलाप कर रहीं हो। जहाँ प्रकृति की हरीतिमा अच्छादनों के पार सिसक रही हों। कवि उम्र के चाहे जिस पड़ाव पर रहे लेकिन फिर भी वे अपनी कविता में प्रेम करना नहीं छोड़े हैं वह चाहे प्रकृति से हो, पशु पक्षियों से हो या फिर जीवन और मृत्यु से हो। अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रेम एक बुनियादी सरोकार रहा है। 'संवाद' अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह का केन्द्रीय भाव कहा जा सकता है। खासतौर पर कहा जाये तो अशोक वाजपेयी इन कविताओं में सुख और दुःख से निरंतर संवाद स्थापित करते रहे हैं। उनकी इस काव्य-संग्रह की कविताओं में पुकारना, बुदबुदाना, आऊँगा, जाऊँगा इत्यादि शब्द संवाद के प्रतीक हैं। 'संवाद' मनुष्य और मनुष्य के बीच तो होता ही है लेकिन पेड़-पौधे, पशु-पक्षियों, नदी-झरनों और दुख से संवाद करना मानवीय कर्म में एक महत्वपूर्ण कार्य है, जो इंसान के जीवित होने का भी प्रमाण है। उदय प्रकाश की एक कविता है 'मारना' उसमें लिखते हैं कि 'आदमी / मरने के बाद कुछ नहीं सोचता / आदमी / मरने के बाद कुछ नहीं बोलता / कुछ नहीं सोचने और कुछ नहीं बोलने पर / आदमी मर जाता है।' अशोक वाजपेयी उन मरे हुए आदमियों की श्रेणी में नहीं आते वे सुनते भी हैं और अपनी कविताओं में पुकारते भी हैं-

"तुम्हें पुकारना चाहता हूँ

न्यौता देना चाहता हूँ

देवताओं, पक्षियों, वनस्पतियों, नक्षत्रों को,

गाना चाहता हूँ

अज्ञात भाषाओं, अनाम स्वरलिपियों में असंख्य गान।"[1]

दु:ख जब आता है तब हमें पता नहीं चलता लेकिन दुख स्वयं हमें अपने होने की खबर देता है। दुख एक चिट्ठी की तरह होता है। यह मनुष्य को अपने होने की सूचना देता है क्योंकि यदि सुख नहीं आयेगा तो मनुष्य दुनिया से बेखबर ही रहेगा। अधिकांश लोग दु:ख के समय में ही किसी को याद करते हैं, अर्थात् मनुष्य के होने की इस काव्य-संग्रह में कवि समय, समाज, व्यक्ति और उसके सुख-दु:ख के साथ मानवीय संबंधों से भी संवाद करते नजर आये हैं। जो एक कवि को कर पाना बहुत ही मुश्किल होता है लेकिन अशोक वाजपेयी जीवन के प्रति अनुराग के कवि हैं जिसमे सुख और दु:ख को भी साथ लेकर चलते हैं। वे अपनी कविता में कहते हैं कि दु:ख चिट्ठी रसा के सामान है -

"**दु:ख चिट्ठी रसा है**

हमें खबर देता है अपने होने की।"[2]

14. '**कहीं कोई दरवाजा**':- 'कहीं कोई दरवाजा' अशोक वाजपेयी का 14वाँ कविता संग्रह है, जो सन् 2013 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में कुल 62 कविताओं को संग्रहीत किया है। जिसे तीन भागों में विभाजित किया है- 'अपने हाथों से उठाओ पृथ्वी' इसके अंतर्गत

1 वाजपेयी, राजकमल. दुख चिट्ठीरसा है. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2013, पृष्ठ – 78।

2 वही, पृष्ठ – 134 |

16 कविताओं को रखा गया है। दूसरा भाग ‘मंडला के रास्ते कुछ कविताएँ’ इसके अंतर्गत 4 कविताओं को रखा गया है। तीसरा भाग ‘नान्त’ इसके अंतर्गत शेष 42 कविताओं को रखा गया है। चूँकि प्रस्तुत शोधकार्य अशोक वाजपेयी के इस काव्य-संग्रह पर ही आधारित है। इसका विस्तृत अध्ययन द्वितीय अध्याय में किया गया।

15. **‘नक्षत्रहीन समय में’**:- ‘नक्षत्रहीन समय में’ अशोक वाजपेयी का 15वाँ काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है। वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी की काव्य यात्रा ’शहर अब भी संभावना है’ (1966) से शुरू हुई थी। यह काव्य यात्रा विभिन्न पड़ावों से गुजरते हुए ‘नक्षत्रहीन समय में’ (2016) तक की यात्रा तय करती है और अभी भी अनवरत रूप से जारी है। ‘नक्षत्रहीन समय में’ काव्य-संग्रह अशोक वाजपेयी की कविता-लेखन में परिपक्वता का प्रमाण है, जो कि एक कवि की नवीन कविताओं का संग्रह है। यह संग्रह आज के अंधकार युक्त समय का ऐसा सच है, जिसमें वर्षों पहले की मुक्तिबोध की चीख फूट पड़ी है। कविताओं एवं उनकी भाषा में आक्रामकता नहीं बल्कि नरमी है। इस काव्य-संग्रह की कविताओं में कवि ने वर्तमान समय और समाज की भयावहता को अपनी भाषा में प्रकट करने का सहज प्रयास किया है।

हम आज ऐसे समय में जीवन-यापन कर रहे हैं जहाँ पर झूठ को सच की तरह देखा जाता है। वह झूठ भी सच की तरह अडियल नहीं है कि एक बात पर अड़ गया तो उसे ही माने। लेकिन झूठ सभी को स्वीकार कर लेता है। कविता झूठ को सच नहीं करती कभी-कभी सच को गल्पों में गढ़ने का प्रयास करती है। जिसे हम झूठ समझ बैठते हैं परन्तु ऐसा नहीं। कविता भाषा में खुलती है और कई बार तो ऐसा भी होता है कि कविता भाषा के अभाव में अधूरा सच बनकर रह जाती है। कविता एक ऐसी सच्चाई है, जो सिर्फ शब्दों में ही व्यक्त होती है। आज हम जिस चकाचौंध युक्त समय में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उससे कहीं अधिक अँधेरा भी बढ़ रहा है। वह अँधेरा हैं अमानवीयता और असामाजिक होते जाने

का। शब्द भी कम पड़ते जा रहे हैं और शब्दों का धीरे-धीरे कमतर होना मानवीयता पर खतरा है। इस खतरे से बचने के लिए कविता हमारी शब्द-सम्पदा में इजाफा करती है। कविता शब्दों के संसार और उसके अर्थों को अपनी भाषा में खोलने का भी प्रयास करती है।

इस काव्य-संग्रह की कविताओं में हम आग, हिंसा, भ्रष्टाचार, नश्वरता, प्रतिकार, घृणा, आतंकवाद, अन्याय, बाजारीकरण, विज्ञान, राजनीति, संचार, धर्म और हिंसा आदि को बखूबी देख सकते हैं। यह काव्य-संग्रह वर्तमान समय के यथार्थवादी दृष्टिकोण से निर्मित महत्वपूर्ण दस्तावेज है। कविता में वे लिखते हैं कि-

> **"हत्यारों के दिग्विजयी जुलूस के कानफोड शंखनाद**
>
> **और घरों में गहराते अंधेरों के बीच**
>
> **थोड़ी सी जगह चाहिए।"**[1]

हमारे समय में हिंसा, भ्रष्टाचार, आतंकवाद आदि इन तमाम के बढ़ने से मानवीयता के सभी दरवाजे बंद होने लगे हैं। इन बंद हो रहे अमानवीयता के तमाम दरवाजों को खोलने का महत्वपूर्ण कार्य अशोक वाजपेयी की कविता करती है। अशोक वाजपेयी कविता को एक दरवाजा मानते हैं, और वह भाषा में खुलता है। वह दरवाजा भाषा के बिना खुलना असंभव है। कविता अंधेरे में अलक्षित पड़ी सच्चाई को झूठ के चकाचौंध वाले परदे से हटाकर स्वच्छ रोशनी में लाती है। वे कविता को एकमात्र दरवाजा ही नहीं मानते बल्कि भाषा में मनुष्य होने का प्रमाण भी मानते हैं। 'नक्षत्रहीन समय में' काव्य-संग्रह की भूमिका में अशोक वाजपेयी स्वयं लिखते हैं कि "**कविता दरवाजा नहीं, बुर्ज भी है। हमारे समय में अन्तःकरण का शायद आखिरी बुर्ज। बाकी सब धर्म और विज्ञान ने, राजनीति और**

---

1. वाजपेयी, अशोक. नक्षत्रहीन समय में. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2016, पृष्ठ – 45।

आर्थिकी ने, प्रबन्धन और बाजार ने, मनोरंजन और संचार आदि ने अंतर्मुख को देश निकाला दे दिया है। तरह-तरह की हिंसा व्याप रही है। आतंक और युद्धों की हिंसा, बगावत और सशस्त्र विद्रोहों की हिंसा बाजार और मनोरंजन की हिंसा, खेलकूद और सिनेमाई हिंसा, इलेक्ट्रानिक माध्यमों की हिंसा आदि।''[1] हिंसा चाहे जैसी भी हो खतरा हमेशा मानवीयता को ही रहा है। ऐसे में कविता हिंसा का प्रतिरोध करती है। लोगों को उनके द्वारा की गई हिंसा से वाकिफ़ कराती है। हम एक ऐसे नक्षत्रहीन समय में है जहाँ सच सिर्फ कविता में ही संभव है। अशोक वाजपेयी वर्तमान की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कविताओं में प्रश्न करते हैं। वे अपनी कविता में लिखते हैं -

"सचाई गड्ड-मड्ड हो गई हो

शब्द तो बचे हैं।

..

"शब्द इतने कम क्यों हैं ? भय इतना अधिक क्यों ?

चीख-पुकार, शोर-गुल इतना कनफोड़ क्यों ?

खामोशी इतनी लाचार क्यों ?

चकाचौंध इतनी अधिक क्यों ? रोशनी इतनी कम क्यों ?

सब कुछ को लीलता भूगोल इतना विकराल क्यों ?"[2]

---

1. वाजपेयी, अशोक. नक्षत्रहीन समय में. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2016, पृष्ठ – 11।

2. वाजपेयी, अशोक. नक्षत्रहीन समय में. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2016, पृष्ठ – 78।

1.1.1 विभिन्न काव्य-संग्रहों की रचनात्मक प्रक्रिया

समकालीन हिन्दी कविता संसार में अशोक वाजपेयी कहाँ खड़े हैं और उनकी रचनाओं में कितनी व्यापकता है तथा वे अपनी कविताओं में संसार की किन-किन चीजों को रचने का प्रयास करते हैं ? अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं की रचना में जिन विषय-वस्तुओं को अपनी कविता के केन्द्र में रखते हैं। यह स्पष्ट करने के लिए हमें उनके विभिन्न काव्य-संग्रहों के अध्ययन के पश्चात् ज्ञात होता है कि अशोक वाजपेयी अपनी काव्य रचनाओं में वर्षों से चली रही परम्पराओं के प्रतीक एवं बिम्बों का प्रयोग नहीं करते बल्कि लीक से हटकर अपना अलग काव्य-संसार रचते हैं। वे अपनी काव्य-रचनाओं में ऐसे काव्य विषयों को चयनित करते हैं जिन्हें हमारा समय, समाज और समकालीन हिन्दी कविता भी अलक्षित कर चुकी है। अशोक वाजपेयी उन अलक्षित काव्य विषयों पर कविता रचते हैं।

हमारा समय ऐसा समय है जहाँ हम बहुत कुछ पीछे छोड़ते जा रहे हैं उस पीछे छूटते हुए को बचाने और सहेजने का कार्य अशोक वाजपेयी की कविताएं करती हैं। अशोक वाजपेयी एक साक्षात्कार में कन्हैयालाल नन्दन से बात करते हुए कहते हैं कि "**कुछ चींजे जो छूट गई, मैं एक तरह से उन छूट गई चीजों का कवि हूँ। प्रेम छूट गया, कोमलता छूट गई, प्रकृति छूट गई-इनसे जो हमारा एक गहरा संबंध था, वो छूट गया। पड़ोस छूट गया। समय से हम इतना आक्रांत हो गए कि अनंत छूट गया। तो ये जो छूटी हुई चीजें हैं-कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि जैसे यहाँ कूड़ा बटोरने वाले लोग आते हैं, सब लोगों के बाद कूड़ा बिखेरकर बहुत सारी चीजों को ढूँढ़ते हैं-उसी तरह मैं छूटे हुए, बिखरे हुए से मतलब की चीजें बटोरता हूँ।**"[1]

1. वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ - 73।

कविता में हम संसार की समस्त चीजों को समाहित नहीं कर सकते। फिर भी कोई कवि ज्यादा से ज्यादा संसार को रचने की हमेशा कोशिश करता है। कवियों के सन्दर्भ में तो यह धारणा रही है कि 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि'। कवि अपनी कविता में न केवल भौतिक संसार को रचता है, बल्कि इस भौतिक संसार से परे भी रचता है, जो इस दुनिया में भी नहीं है। उसका होना भी संभव नहीं है लेकिन वह असंभव कविता मे कल्पना के माध्यम से संभव हो जाता है। कविता में समस्त संसार को समेटना मुश्किल है क्योंकि संसार इतना व्यापक है कि कवि अपनी भाषा में संसार को समेटते हुए भी कुछ न कुछ जरूर छूट जाता है। अशोक वाजपेयी उन छूटी हुई चीजों के कवि हैं। कविता में प्रेम छूट गया उस छूटे हुए प्रेम को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। प्रकृति की कोमलता को भी अपनी कविता में स्थान देते हैं। प्रकृति और मनुष्य का गहरा संबंध था, जो अब टूटता नजर आने लगा है तथा उस टूटते हुए संबंधों को पुनः स्थापित करने के लिए कविता में टूटे हुए सम्बन्धों की दरकरार करते हैं। आज हम जिस समाज में रह रहे हैं उससे तो ठीक, अपने पड़ोसी तक की खबर नहीं रखते हैं। इसलिए पड़ोस छूटता जा रहा है अशोक वाजपेयी समाज के साथ-साथ अपने पड़ोसी की भी कविता में खबर रखते हैं। आज हम इतने आक्रांत हो गए हैं कि समय को भी पीछे छोड़ते जा रहे हैं, जिससे हम अनंत को भूल गए हैं। अशोक वाजपेयी उस अक्रान्त समय में भी अपनी कविताओं मे अनंत की तलाश करते नजर आते हैं। परितोष कुमार मणि से साक्षात्कार में अपनी कविताओं के बारे में बातचीत करते हुए वह कहते हैं कि "**मैं प्रेम, मृत्यु, जीवनासक्ति के साथ-साथ अनंत का भी कवि हूँ।**"[1] हर कवि के कुछ बीज शब्द होते हैं। 'अनंत' शब्द का प्रयोग अशोक वाजपेयी के लगभग सभी काव्य-संग्रहों में देखा जा सकता है।

अशोक वाजपेयी अपने समय और समाज से छूट गयी चीजों को अपनी कविता में बटोरते व सहजते हैं। क्योंकि उनका छूटना मानवीयता के लिए खतरा है। इससे मनुष्यता के नष्ट होने की आशंका

---

1. वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ - 128।

रहती है। अशोक वाजपेयी उस छूटे हुए को अपनी कविता में पूरी मुस्तैदी के साथ बचाने की महत्वपूर्ण कोशिश करते हैं। वे इसे कवि का प्रमुख कर्म भी मानते हैं। वह अपनी कविताओं में प्रकृति, मनुष्य-जीवन, पृथ्वी, माँ-पिता और पुरखों आदि को भी रचते हैं। अशोक वाजपेयी की प्रतिनिधि कविताओं की भूमिका में अरविंद त्रिपाठी लिखते हैं कि 'वे प्रकृति से लेकर मनुष्य, पृथ्वी से लेकर ब्रह्माण्ड, माँ पिता से लेकर अज्ञात पितरों, एक बच्चे की खोई हुई गेंद से लेकर जाड़े के दिनों में ठिठुरते बीड़ी पीते बूढ़े चौकीदार तक की खबर अपनी कविता में रखते हैं।' उनकी रचनात्मकता के सन्दर्भ में 'प्रियम अंकित' लिखते हैं कि "**अपनी कविता में अशोक वाजपेयी समय की वर्तमानता के जिन बिन्दुओं को विन्यस्त करते हैं, उनमें जीवन की त्रासद स्थितियों के दबाव का बोझ इतना ज्यादा है कि उसे ढोने में, या कहें कि कविता के संसार में उसके रचनात्मक विन्यास को संभव बनाने में कवि की रचनात्मक ऊर्जा और धैर्य का एक बड़ा हिस्सा खप जाता है।**"[1]

अशोक वाजपेयी की कविता एक खबर की तरह है, जिसमें वह अपने समाज, परिवार, पड़ोस, काका, माँ-पिता और दुधमुँही बच्ची की भी खबर रखते हैं। दुख चिट्ठी रसा है की 'कोई नहीं सुनता' कविता में लिखते हैं कि-

> "**कोई नहीं सुनता प्रार्थना-**
>
> **सुनती है अपने पालने में लेटी दुधमुँही बच्ची,**
>
> **जो आदिम अँधेरे से निकलकर उजाले में आने पर**
>
> **इतनी भौंचक है।**"

1. अंकित, प्रियम. समीक्षा पत्रिका. वर्ष-49. अंक-02. जुलाई-सितम्बर. इंदिरापुर, उत्तरप्रदेश, 2016, पृष्ठ – 32।

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में प्रेम, मृत्यु, जीवन, दुनिया, समय, अनंत, अनुभव, विचार, प्रकृति, समाज, परिवार, मानवीय मूल्य, पड़ोस, भाषा, शब्द, कविता, देवता, पुरखे, संवेदना, हवा, पानी, आग, पृथ्वी आदि को केन्द्रीय विषय बनाते हैं। अशोक वाजपेयी की कविताओं के केन्द्र में वह अलक्षित वस्तुएँ रही है जिनको आज के समय, समाज ने दरकिनार कर दिया है और बची हुए चीजों को छोड़ता जा रहा है। अशोक वाजपेयी उन छूटी हुई चीजों को पुनः स्थापित करने का जटिल प्रयास अपनी कविताओं के माध्यम से करते हुए दिखाई देते हैं। चीजों को बचाए रखना एवं चीजों से संबंध बनाए रखना मानवीय मूल्यों को बचाएँ रखने का प्रमाण है।

1.2 आलोचना ग्रंथ एवं आलोचनात्मक दृष्टि

आलोचना ग्रंथः-

- फिलहाल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1970 ई.।
- कुछ पूर्वग्रह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1984 ई.।
- समय से बाहर, वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, राजस्थान, प्रकाशन वर्ष 1994 ई.।
- कविता का गल्प, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1996 ई.।
- कविता के तीन दरवाजे, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 2016 ई.।

'**फिलहाल**' :- 'फिलहाल' सन् 1970 में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित अशोक वाजपेयी की पहली आलोचना पुस्तक है। अशोक वाजपेयी कवि होने के साथ-साथ एक आलोचक भी हैं। आलोचना लिखने की शुरुआत कविता के साथ ही प्रारम्भ होती है। वह ऐसा समय था कि कविता में कुंठा, हताशा और मोहभंग जैसी स्थिति नजर आने लगी थी। कविता की भाषा में जब सपाटबयानी, सतहीपन और

मानवीय दरिद्रता युवा कविता आंदोलन में दृष्टिगोचर होने लगती है तब अशोक वाजपेयी को लगा कि समकालीन युवा कवियों में कविता की समझ नहीं रही है, जिससे कविता की भाषा मे सतहीपन आ गया है । इस आलोचनात्मक ग्रंथ में अशोक वाजपेयी युवा कविता आंदोलन के कवियों द्वारा लिखी कविताओं पर सार्थक आलोचनात्मक टिप्पणीयाँ और कविता की समझ को बौद्धिक तर्कों की कसौटी पर कसने का प्रयास करते हैं । अशोक वाजपेयी आलोचना लिखने के कारणों को बताते हुए वह साक्षात्कार के दौरान 'प्रभात त्रिपाठी' से कहते हैं कि- "**आलोचना लिखने के पीछे दो कारण थे । एक तो उस समय, यानी 1956-57 के आसपास, हिन्दी में नये साहित्य का संघर्ष अपने शिखर पर था । वह युद्ध की तरह लड़ा जा रहा था और छोटे-से-छोटे शहरों से भी अगर कोई नये साहित्य और साहित्यिक मूल्यों की दिशा में कुछ प्रयत्न करता था तो सब लोग उसके साथ हो जाते थे ।**"[1]

अशोक वाजपेयी सन् साठ के बाद उठ खड़े हुए युवा कविता साहित्यिक आन्दोलन के कवियों की रचनाओं पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करते हैं । उस समय में आलोचकों की कमी थी । उस कमी को अशोक वाजपेयी ने अपनी सर्जनात्मक आलोचना के द्वारा पूर्ण किया । इस संदर्भ में स्वयं अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि 'हमने अनुभव किया कि हमारी पीढ़ी में आलोचक नहीं हैं और तब आलोचना के प्रति निष्ठा और एकाग्रता विकसित हुई । देखा जाए तो इस तरह हम इस पीढ़ी में पहले आलोचक थे; रमेशचंद्र शाह और विष्णु खरे ने थोड़ा बाद में लिखना शुरू किया ।' 'फिलहाल' अशोक वाजपेयी का उनके समकालीन युवा कवियों की कविताओं की पड़ताल का एक ऐसा आलोचनात्मक दस्तावेज हैं जिसमें कमलेश, अज्ञेय, रघुवीर सहाय, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रयाग शुक्ल, प्रभाकर माचवे, हरिनारायण व्यास, मलयज और श्रीकांत वर्मा आदि की कविताओं का लेखा जोखा तैयार किया गया है ।

---

1. वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ – 131 |

'फिलहाल' आलोचना ग्रंथ के पहले लेख 'तलाश के दो मुहावरे' नामक शीर्षक लेख में 'कमलेश' की कविताओं पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं कि 'अपनी संवेदनात्मक ऐंद्रिकता में कमलेश इतना जकड़े हुए हैं कि उन्होंने विचारों और उनके टकरावों को, समझ को, अपने काव्य-संसार से देश-निकाला-सा दे दिया है। उनके कवि-व्यक्तित्व में संवेदना और ज्ञान के बीच एक गहरी खाई जान पड़ती है।' वहीं 'कुछ युवा कवि' शीर्षक लेख में 'प्रयाग शुक्ल' की कविताओं के बारे में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि 'प्रयाग शुक्ल' की कविता 'उदास और भावना-भरे युवापन की कविता है।' अगर उन्हीं के शब्दों में कहें तो, कहा जा सकता है कि उनका संसार 'एक पीड़ारहित निजी संसार' है जिसमें बीते हुए सुख, अधूरी कामना, थकान, चमकता-सा इन्तजार, हल्की सी दबाई गई उत्तेजना और बेतरतीब बेचैनी से प्रयाग शुक्ल कविता संभव करते हैं। 'प्रभाकर माचवे' की कविताओं पर टिप्पणी करते हुए 'हड़बड़ी की कविताई : ईमानदारी की सीमाएँ' शीर्षक लेख में अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि 'खेद है कि माचवे के हड़बड़ी के काव्यशास्त्र को संयमित करने के लिए इनके पास प्रासंगिकता की कोई धारणा नहीं है- बौद्धिक स्तर पर हो भी, रचनात्मक स्तर पर नहीं है। कविता में जो कुछ भी अतर्कित आवेश में आ सकता है उसे माचवे ला देते हैं बिना इसकी परवाह किए कि वह प्रासंगिक है या नहीं।' 'अकेलेपन का वैभव' शीर्षक लेख में 'अज्ञेय' की कविताओं पर आलोचनात्मक दृष्टिपात करते हुए अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि 'दरअसल, अज्ञेय की कविता और काव्यशास्त्र में सरोकारों की एकता है और यह बात अज्ञेय के लेखकीय दिमाग की संपूर्णता का साक्ष्य है।' 'जीने के कर्म की परिभाषा' शीर्षक लेख में 'रघुवीर सहाय' की कविताओं के बारे में टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि 'वस्तुतः वे उन थोड़े-से कवियों में से हैं जिनका निजी और पूर्णतः प्रेषणीय मुहावरा विकसित हो चुका है। उपयुक्त भाषा, सहज किन्तु सुनियंत्रित तान और लय तथा तीव्र भावना, शक्ति से भरे और धड़कते हुए जीवन की एक रचनात्मक अन्तःक्रिया से उत्पन्न उनकी कविताएँ सचमुच जीने के कर्म की एक समृद्ध परिभाषा हैं।' 'समकालीन नरक का एक भूगोल' शीर्षक लेख में 'श्रीकान्त वर्मा' की कविताओं के बारे

में अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि 'उनकी जैसी तेज-तर्राट पोर-पोर आधुनिक और प्रखर क्षुब्द युवा कविता में करुणा अनुभूति का एक बुनियादी तत्व हो सकती है। यही नहीं बल्कि यह करुणा की भावना, मेरी समझ में, उनकी कविता में चरितार्थ छटपटाहट, क्रोध, ऊब और चिढ़ को मानवीय से तात्कालिक बनाती है।'

'भयानक खबर की कविता' शीर्षक लेख में 'गजानन माधव मुक्तिबोध' की कविताओं के संदर्भ में अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि 'मुक्तिबोध की कविता एक आश्चर्यकारी संयोग है। उन्होंने हमारी कविता में सार्वजनिक दुनिया और राजनीतिक विचारों का पुनर्वास किया है। उनके शब्दों की शक्ति इन विचारों को कविता में जीवंत बनाती है। वे इन विचारों के बारे में कभी-कभार सीधे भले लिखें, लेकिन उनकी शैली ज़्यादातर अप्रत्यक्ष ही है। हालांकि वे जरूरत होने पर रिटौरिक का इस्तेमाल करते हैं, उनकी भाषा सूक्ष्म, समृद्ध और निजी भाषा है।'

अशोक वाजपेयी आलोचना को कवि का बुनियादी कर्म ही स्वीकार नहीं करते बल्कि आपदधर्म मानते हैं। उन्होंने इस आलोचनात्मक ग्रंथ में अपने समय की कविता को समझने और उस समय के मनुष्य की हालत की पड़ताल करने की कोशिश की है क्योंकि किसी भी समय की कविता उस समय और समाज का साक्ष्य होती है। अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि युवा कविताओं में इतिहास विवेक को ताक पर रख दिया है और अधिकांश युवा कवियों की भाषा में सपाटता और सतहीपन आ गया है। नयी कविता के कवियों में जो बौद्धिक समझ और विचारशीलता थी आज के युवा कवियों की कविताओं में उसका अभाव देखने को मिलता है। बौद्धिक तर्क की जितनी अवज्ञा आज साहित्य में है उतनी शायद हाल के इतिहास में कभी न रही होगी। 'फिलहाल' अशोक वाजपेयी का आलोचना ग्रंथ सन् साठ के बाद के प्रमुख युवा कवियों की कविताओं को समझने-बूझने, उस समय की काव्य-भाषा में किए गए नवीन प्रयोगों आदि को जानने का महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

'कुछ पूर्वग्रह' :- 'कुछ पूर्वग्रह' कवि आलोचक अशोक वाजपेयी की दूसरी आलोचना पुस्तक है जिसका प्रकाशन सन् 1984 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से हुआ है। इस आलोचना ग्रंथ में पिछले लगभग पन्द्रह वर्षों में साहित्य और कलाओं पर लिखी गई आलोचनात्मक प्रतिक्रियाओं को संग्रहीत किया गया है। इस आलोचना ग्रंथ के अधिकांश लेख उनके द्वारा संपादित पत्रिका 'पूर्वग्रह' में भी प्रकाशित हुए हैं जिसके कारण इस आलोचना ग्रंथ का नाम कुछ पूर्वग्रह रखा गया है। यह 'फिलहाल' की तरह व्यवस्थित रूप से आलोचनात्मक ग्रंथ तो नहीं फिर भी कई मायनों में महत्वपूर्ण साबित होता है क्योंकि इसमें साहित्य के अलावा समाज संस्कृति कला आदि पर भी लेख लिखे हैं। उन्हें भी अशोक वाजपेयी ने इसमें शामिल किया है।

अशोक वाजपेयी साहित्य और कलाओं को मनुष्य का एकमात्र स्थायी प्रजातन्त्र मानते हैं। 'पूर्वग्रह' अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित एक साहित्यिक पत्रिका है उसके संदर्भ में कृष्ण मोहन झा से साक्षात्कार में वह कहते हैं कि "**साहित्य, जीवन, मनुष्य, संसार, भाषा आदि को देखने-समझने-विन्यस्त करने की स्वतंत्र दृष्टि है जिसका अन्य सभी दृष्टियों से सम्वाद और सम्पर्क होता रहता है पर उसे अन्य किसी दृष्टि का संस्करण मानना उपनिवेश बनाना हमें गलत लगाता है। अगर धीरज और समझ से पढ़ें तो 'पूर्वग्रह' में बराबर साहित्य का अन्य सत्ताओं से, फिर वह समाज हो या विचारनुशासन् संबंध और संपर्क प्रगट और विश्लेषित होता रहा है।**"[1] इस ग्रंथ के आलोचनात्मक लेख अलग से नहीं लिखे गये बल्कि 'पूर्वग्रह' पत्रिका में पूर्ण प्रकाशित लेखों को संग्रहीत किया गया है।

'कुछ पूर्वग्रह' पर टिप्पणी करते हुए गोपाल वर्मा अशोक वाजपेयी के इस आलोचना ग्रंथ के लेखों में आधुनिकोत्तर साहित्य के संकेत देखते हैं। 'कुछ पूर्वग्रह' के लेखों में आधुनिकोत्तर स्थितियों का

---

1. वाजपेयी, अशोक, मेरे साक्षात्कार, नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ – 41।

'असली संकेत' छुपा हुआ है जिसमें जीने का हमें आदी होना पड़ेगा। अशोक वाजपेयी की आधुनिक योजना में बहुवचनीयता में भी कहीं भविष्य की शक्तिशाली धारणा 'विकेन्द्रण' में दुबकी हुई है। इस आलोचना ग्रंथ में अशोक वाजपेयी कविता के विविध पक्षों पर बात करते हुए 'शमशेर बहादुर सिंह' की कविता के बारे में लिखते हैं कि 'शमशेर की कविता ने एक नई जमीन तलाशने की कोशिश की है लेकिन अपने मुहावरों को नहीं छोड़ा है। 'शमशेर बहादुर सिंह' की कविताओं में सजग और संवेदनशीलता का प्रमाण भी दृष्टिगोचर होता है। 'शमशेर बहादुर सिंह' की कविताएँ न केवल एक भिन्न प्रकार का रसास्वादन कराती हैं बल्कि नये अर्थों को भी व्यक्त करने में सफल हुई हैं जो आधुनिकता को बरकरार रखते हुए पारम्परिक कला दृष्टि का मूल्य है। 'शमशेर बहादुर सिंह' की कविता में रोजमर्रा के संसार का ऐन्द्रिय अहसास है जो उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। 'शमशेर बहादुर सिंह' की कविता में चीजों का जो धड़कता काव्य-संसार है। वह एक सच्चे भारतीय कवि का परिचायक है। इनकी कविता में आतंक नहीं बल्कि सहज अभिव्यक्ति है। 'जीने की अटूट इच्छा' शीर्षक लेख में 'रघुवीर सहाय' की काव्य संवेदना पर विचार किया गया है। इसमें अशोक वाजपेयी 'रघुवीर सहाय' की कविताओं में वैचारिक सक्रियता और संवेदना की पड़ताल करते हैं। 'रघुवीर सहाय' की कविताओं में न मुहावरों का अतिक्रमण है और न कोई लाग लपेट दिखाई देती है। समय चाहे जितना भी भयानक क्यों न रहा हो लेकिन उनकी कविता समय के सच से अपना मुँह नहीं मोड़ती है। इनकी कविताओं में मानवीय संबंधों को बचाये रखने का अदभुत सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। इनकी कविताओं के संदर्भ मे अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि 'रघुवीर सहाय की कविताएँ महापतन के कगार पर होकर भी, हत्या, षड़यंत्र, जासूसी के माहौल में भी, मानवीय संबंधों की असंख्य विकृतियों के बीच भी, वह अपनी जिजीविषा और प्रकारान्तर से अपने मानवीय होने में अटल और अक्षत विश्वास रखती हैं। रघुवीर सहाय कि कविताएँ भयंकर तनावों और अमानवीयकरण की शक्तियों से हमें समझ भरी संवेदना प्रदान करती है। रघुवीर सहाय की कविताएँ भयानक समय में भी जबरदस्त मुठभेड़ करती हैं।'

'उदाहरण होने से बचकर' शीर्षक लेख में 'विनोद कुमार शुक्ल' की कविता को स्पष्ट करते हुए अशोक वाजपेयी विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं को किसी चलताऊ मुहावरों में लिखी नहीं मानते हैं और नयी अलंकारिकता बडबोलेपन और मध्यवर्गीय आत्मदया आदि सभी से मुक्त देखते हैं। जैसाकि समकालीन कविता के ज्यादातर युवा कवियों में दृष्टिगोचर होता है। 'विनोद कुमार शुक्ल' की कविताओं में महिमा-मंडित मनुष्य नहीं है, बल्कि एक ऐसा मनुष्य है जो अपनी साधारणता में बराबर बाध्य है। इनकी कविता में मध्यवर्गीय समाज का चित्रण देखने को मिलता है। इनके यहाँ न तो बिम्बों का कोई चमकता हुआ संसार है और न अति काल्पनिकता है। इनकी कविता में शांत और अनिवार्य ऐन्द्रिकता के साथ चीजों को समझने पकड़ने का एक आदिम एहसास भी है। 'यातना के खिलाफ शब्द' शीर्षक लेख में 'सुदामा पाण्डेय 'धूमिल'' की कविताओं पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं कि 'सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' जुझारू या जनवादी चेतना से सम्पन्न कवि थे लेकिन उनकी काव्य-संवेदनाओं में कुछ रूपवाद का आग्रह यदाकदा देखने को जरूर मिल जाते हैं। 'धूमिल' कविता को एक औज़ार मात्र समझते थे। 'धूमिल' की कविता और विचार में राजनीति अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेकिन कविता राजनीति की पिछलगुआ नहीं है। वह संघर्षशील राजनीति की सहधर्मी है। अशोक वाजपेयी मानते हैं कि 'धूमिल' की चेतना को उपयोगी मानकर स्वीकार करना चाहिए क्योंकि 'धूमिल' के जैसा कविता में आदिम विश्वास और भाषा में सहजता उनके सहधर्मी कवियों में खोजना दुर्लभ है।

अन्य महत्वपूर्ण लेखों में प्रकट विकट मुक्तिबोध की कविताओं पर आधारित लेख है, कविता की वापसी, आलोचना की जरूरत, अनिवार्य अंतर्विरोध, दूसरों के लिए शब्द, जन्नत की हकीकत, बुजुर्गों के लिए जगह, अनुवाद का औचित्य, दुनिया बदलने की कोशिश 'श्रीकांत वर्मा' की कविता पर आधारित, लेखों में संस्कृति के विरूद्ध साहित्य, सत्ता और संस्कृति, समय के अंतर्विरोध, शब्द स्मृति और संगीत कलाओं पर आधारित साहित्य की स्थिति में साहित्य की वर्तमान स्थिति पर आधारित आदि प्रमुख हैं।

अशोक वाजपेयी 'कुछ पूर्वग्रह' आलोचना ग्रंथ में अपने समकालीन कवियों की कविताओं पर तो टिप्पणियाँ करते ही हैं साथ में वर्तमान साहित्य की स्थिति, संस्कृति में हो रहे निरंतर परिवर्तन, आलोचना के बदलते स्वरूप, दुनिया सत्ता, वर्तमान समय की भाषा, समाज और शब्द आदि पर भी गंभीर विचार प्रकट किये हैं।

'समय से बाहर' :- 'समय से बाहर' सन् 1994 ई. में वाग्देवी प्रकाशन बीकानेर, राजस्थान से प्रकाशित विभिन्न विषयों पर आधारित निबंध-संग्रह है । इसमें समकालीन कविता, संगीत, रंगमंच, संस्कृति और कलाओं पर गंभीर और महत्वपूर्ण लेख शामिल किए गए हैं। इस आलोचना ग्रंथ में 'सुनने-गुनने का अर्थ' 'ध्रुपद' के संगीत पर लिखा गया लेख है जिसमें ध्रुपद के संगीत में जो मनुष्य की आवाज है उसे 'विश्व संगीत' की संज्ञा दी गई है। 'ध्रुपद' की आवाज में मनुष्य, मनुष्य की आवाज का अमूर्तन अद्वितीय है यह आवाज का अमूर्तन समस्त विश्व की आवाज के संदर्भ में है। 'शब्द, स्मृति और संगीत' शीर्षक लेख में अशोक वाजपेयी ने कविता और संगीत के सम्बन्ध को स्थापित करते हुए 'कुमार गंधर्व' के संगीत में शब्द और स्मृति के समन्वय को बड़ी शिद्दत के साथ दर्शाया है। शब्द ही हैं जो साहित्य को एक विशाल वृक्ष का रूप प्रदान करते हैं। कुमार गन्धर्व के शब्दों में अनंत की तलाश है। 'दूसरों की उपस्थिति' में कला जगत पर सिनेमा एक ऐसा रंगमंच जहाँ मनुष्य अपने जीवनानुभवों को प्रकट करता है । 'पढ़ना नहीं देखना' लेख में अशोक वाजपेयी चित्रकलाओं चिंता की है। आज के समय में सबसे बड़ी चिंता का विषय है कि साहित्य और कलाएँ हाशिये पर आ खड़ी है।

अशोक वाजपेयी के इस आलोचनात्मक ग्रंथ पर टिप्पणी करते हुए इसके फ्लैप पर लिखा गया है कि हिन्दी की यह अपनी तरह की पहली और अभूतपूर्व पुस्तक है। हिन्दी में, और संभवतः भारतीय भाषाओं में, पहलीबार एक साहित्यकार ने अपने समय की कलाओं से आलोचनाओं और रचना दोनों स्तरों पर उलझने और उन्हें अपनी विशिष्टता में समझने की कोशिश की है। इस आलोचना ग्रन्थ में

अशोक वाजपेयी ने हमारे समय और समाज से नष्ट होते जा रहे साहित्य की शब्द-सम्पदा, संस्कृति और कलाओं पर गंभीर एवं कारगर चिंता जताई है।

'कविता का गल्प' :- अशोक वाजपेयी की आलोचना पुस्तक 'कविता का गल्प' सन् 1997 ई. में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इस आलोचनात्मक पुस्तक के लेखों को चार भागों में विभाजित किया गया है, जिसमें प्रथम 'कविता का गल्प', दूसरा 'बीच की नीरवता', तीसरा 'पत्तियाँ गिर रही हैं' और अंतिम चौथे भाग को 'गो धूलि में' नाम से अभिहीत किया गया है। इसके प्रथम भाग में 'कविता का गल्प' लेख में, जो कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय में सन् 1990 ई. में दिया गया व्याख्यान है जिसमें कविता को एक गल्प की तरह माना गया है। कविता गल्प गढ़ती है और उसे भाषा में प्रकट करती है। अशोक वाजपेयी कविता को एक अशुद्ध कला मानते हैं क्योंकि भाषा एक अशुद्ध व्यापार है और लिखते हैं कि 'मनुष्य स्वयं भी अशुद्ध है भले ही वह शुद्धता की कल्पना और कभी-कभार उसकी खोज भी करता हो। इस अशुद्धता का, उसकी पूरी स्पंदित जटिलता में, साहित्य वरण करता है। कविता सिर्फ सच्चाई को प्रकट करती है, सत्यता को नहीं क्योंकि सचाई में विभिन्न ब्यौरों के माध्यम से सच को व्यक्त करती है।' इस संदर्भ में अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि "**कविता सत्य कथन या संशोधन नहीं करती वह सचाई से अपने गल्प गढ़ती है।**"[1]

अशोक वाजपेयी साहित्य को गल्प मानते हैं। साथ ही धर्म, विज्ञान, इतिहास, राजनीति आदि को भी गल्प मानते हैं क्योंकि ये सभी आत्मचेतस में रहता है। सच्चाई कविता में हमेशा अभय पाती है। वह अंतर्विरोधों, संदेहों आदि को अलग करके महसूस नहीं करती बल्कि उनसे ही साहित्य में समाज की वास्तविकता दृष्टिगोचर होती है। जब शब्द पर चारों तरफ से हमला हो रहा हो तब कविता शब्द को बचाने और उसकी गरिमा को बनाये रखने का महत्वपूर्ण कार्य करती है। शब्द को बचाना कविता का

---

1. वाजपेयी, अशोक. कविता का गल्प. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1997, पृष्ठ – 15।

एक बुनियादी कर्तव्य है क्योंकि शब्द में ही कविता का जीवन और अस्तित्व निहित रहता है। शब्द के अभाव में न कविता होगी, न साहित्य होगा और न कोई भाषा होगी। इसलिए अशोक वाजपेयी शब्द, भाषा और कविता को ही जीवन मानते हैं। यदि शब्द नहीं बचेगा तो हमारा जीवन भी निरर्थक रहेगा। 'कविता का देश' लेख में अशोक वाजपेयी ने हिन्दी भाषी समाज में कविता की स्थिति पर गंभीरतापूर्ण वक्तव्य दिया है। आज के हिन्दी भाषी समाज में कविता के प्रति बढ़ती हुई उदासीनता पर गहरी चिंता जताई है। यह ऐसा सत्य था, जब हिन्दी में विविध विधाएँ जन्म ले चुकी थी जैसे - कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, यात्रा-वृतांत, संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी इत्यादि। इन सभी साहित्यिक विधाओं के उदय होने से कविता के प्रति उदासीन होना स्वाभाविक ही है।

हिन्दी में गद्य साहित्य के विस्तार ने साहित्य को एक नए रूप में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है। इसलिए कविता के प्रति उदासीनता का भाव दृष्टिगोचर हुआ है। इस पर 'कविता का देश' नामक शीर्षक लेख में अशोक वाजपेयी चिंता जाहिर करते हुए लिखते हैं कि कविता का आज समाज से जितना सीधा सरोकार है शायद यह पहले कभी नहीं था। कविता में नितांत समसामयिकता एक परम मूल्य की तरह प्रचलित है। आज जो हो रहा है, आज के दबाव-तनाव हैं, इस हालत के बारे में आज की हिन्दी कविता का अधिकांश सीधे-सीधे बात करता है। पर विडम्बना यह है कि कविता के प्रति समाज की विमुखता या उदासीनता भी शायद अभूतपूर्व ही है। 'कविता का समय' शीर्षक लेख में वर्तमान समय में कविता लिखने के साथ-साथ पढ़ने-सुनने में भी अब कोई रूचि नहीं रह गई है। इसके प्रति चिंता व्यक्त की है। अन्य लेखों में 'सूर्य दीप्त कविता', 'कविता का भूगोल' हैं। दूसरे भाग में 'बीच की नीरवता' के अंतर्गत विजय देव नारायण साही, शमशेर बहादुर सिंह, रघुवीर सहाय, अज्ञेय, जयशंकर प्रसाद, कुँवर नारायण, विष्णु खरे, जोसेफ वोडस्की, अरूण कोलहकर और स्टीफेन स्पेण्डर की कविताओं पर गंभीर एवं विस्तृत रूप से कलम चलाई है। 'बीच बहस में कविता' शीर्षक लेख में वह विजयदेव नारायण साही

की कविताओं पर लिखते हैं कि 'उन्होंने कम लिखा, उससे भी कम छपवाया लेकिन वे बीच बहस में बने रहे।' उन्हें अक्सर 'बहस करता हुआ आदमी' कहकर याद किया जाता है। वह एक बहस करते आदमी की कविता-भर नहीं है, वह बहस करती कविता है। यह कविता अपनी समकालीन कविता से भी बहस करती है। 'अज्ञेय' को शब्द के कवि और 'शमशेर बहादुर सिंह' को नीरवता का कवि कहते वह हुए लिखते हैं कि अगर अज्ञेय शब्द के कवि हैं, उसकी मुखरता के, तो शमशेर उसकी नीरवता के कवि हैं, उसके मौन के कवि हैं।

'कविता का गल्प' आलोचना पुस्तक के तीसरे भाग में 'पत्तियाँ गिर रही हैं' शीर्षक के अंतर्गत लिखे विभिन्न लेखों में समकालीन कविता को परिभाषित करने की चेष्टा की गई है। 'प्रार्थना में खाली' शीर्षक लेख में लिखते हैं कि कविता प्रार्थना नहीं हो सकती क्योंकि वह दूसरे से खाली नहीं हो सकती। वह कामना को तजकर किसी तदाकारिता की इच्छा नहीं कर सकती। कविता को संसार चाहिए : वह संसार को उचित और आवश्यक मानती है। 'लोग चले गए हैं, सिर्फ शब्द बचे हैं' शीर्षक लेख में वह कविता के भूगोल पर लिखते हैं कि कविता सिर्फ लोगों के ही नहीं जगहों के बारे में भी होती है। बिना भूगोल के कविता अपनी जीवित सत्ता नहीं पा सकती। कविता में कल्पना सिर्फ अपना इतिहास ही नहीं खोजती : कल्पना अपना भूगोल भी पाती है। 'कीचड़-सने जूते' शीर्षक वक्तव्य में कविता को रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ी हुई मानते हुए अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि कविता रोज़मर्रा को हिकारत से छोडती नहीं है : वह रोज-ब-रोज कि झंझटों को अनदेखा भी नहीं करती। वह जिंदगी के रूटीन को ही ऐसे उत्तेजित या रौशन कर देती है कि उसमें जो रोज़मर्रा या रूटीन नहीं है वह भी शामिल हो जाता है। 'असबाब में देवता' शीर्षक वक्तव्य में कविता का संबंध प्रकृति ईश्वर आदि से जोड़ते हुए लिखते हैं कि कविता सबकुछ रचना मानती है : बहुत कुछ प्रकृति रचती है, बाकी मनुष्य ही रचयिता है। ईश्वर, देवता आदि भी

उसी कि रचना है। कविता मनुष्य के सामान का मीज़ान बनाती है। वह जानती है कि देवता संसार में स्वयंभू नहीं हैं।

'गोधूलि में' शीर्षक से चौथे भाग में अशोक वाजपेयी ने विभिन्न वक्तव्यों में कविता को परिभाषित करने की कोशिश की है। 'गोधूलि में कविता' शीर्षक का यह वक्तव्य अशोक वाजपेयी को सन् 1994 ई. में जब 'दयावती मोदी कवि शेखर सम्मान' प्रदान किया गया था तब उस सम्मान की स्वीकृति के अवसर पर दिया गया व्याख्यान है। इसमें कविता के बारे में बात करते हुए वह लिखते हैं कि कविता सीधे जीवन से कम दूसरों की कविता से अधिक सीखी जाती है- कम से कम मेरे लिए यही सच रहा है। कविता जीने का एक ढंग है : जरूरी नहीं कि बेहतर या कारगर ढंग हो, पर एक अलग ढंग। वह भाषा में जीने का अनुकरण नहीं है- भाषा में जीना है। 'यही कवि कह गया है' शीर्षक से लिखा यह वक्तव्य अशोक वाजपेयी की चुनी हुई कविताओं के संकलन 'घास में दुबका आकाश' की भूमिका है जो सन् 1994 ई. में लिखी गई है। इसमें अशोक वाजपेयी ने अपने निजी व साहित्यिक जीवन के संघर्ष को व्याख्यायित किया है। वे अपने जीवन के संघर्ष के बारे में कहते हैं कि 'हमारे घर पर बिजली नहीं थी :जब मैं नवीं कक्षा में पहुँचा तभी लगी। उसके पहले लालटेन और लैम्प से काम चलता था। उनकी मद्धिम लेकिन आत्मीय रौशनी अभी भी याद है।' वह साहित्यिक संसार की बात करते हुए कहते हैं कि 'रचना और सम्पादन के साथ-साथ आलोचनाकर्म भी लगातार चलता ही रहा है। आरंभ में उसके लिए प्रेरणा नामवर सिंह और देवीशंकर अवस्थी से मिली थी। हालाँकि मेरी आलोचना ने नयी कविता के लिए समाज, पाठकवर्ग और भाषा में संभावना बनाने की कोशिश की है।'

'अब तक का किया धरा' शीर्षक के लेख अशोक वाजपेयी के आठ कविता-संग्रहों के संकलन 'तिनका-तिनका' की भूमिका है जो सन् 1996 ई. में लिखी गई है। अशोक वाजपेयी कविता के संदर्भ में लिखते हैं कि 'हम कविता में घर की आश्वस्ति और संसार का आश्चर्य दोनों की राहत पाते हैं। कविता

अपने घर में होने का अचरज है। कविता में भाषा एक स्मृति है।' इसके संदर्भ में लिखते हैं कि 'कविता एक ओर भाषा में जीना है तो दूसरी ओर भाषा की स्मृति है। अगर अंतर्ध्वनियाँ न हो तो भाषा का कोई संयोजन कविता नहीं हो सकता। कविता निरे जीवन से नहीं बल्कि दूसरों के काव्यानुभवों से सीखकर भी लिखी जाती है। कविता में भाषा याद करती है, सपना देखती है, सच टटोलती है। वे मानते हैं कि कविता में याद करना, एक स्तर पर, शब्दों का शब्दों को याद करना है। अशोक वाजपेयी का 'कविता का गल्प' आलोचनात्मक ग्रंथ अपने समय, समाज, भाषा और अपने समकालीन कवियों की कविताओं को एवं कविता के प्रति अशोक वाजपेयी की दृष्टि को जानने -समझने का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

'कविता के तीन दरवाजे' :- 'कविता के तीन दरवाजे' वर्ष 2016 ई. में राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित अशोक वाजपेयी की नवीनतम आलोचनात्मक पुस्तक है। इस आलोचनात्मक पुस्तक में प्रमुख रूप से सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', शमशेर बहादुर सिंह और गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की कविताओं की आलोचना की गई है। साथ ही अन्य साहित्यिक विधाओं में संस्मरण आदि पर लिखे लेखों का संग्रह है। इस आलोचना पुस्तक में सन् 1965 ई. में अज्ञेय की कविताओं पर लिखे आलोचनात्मक लेख 'अकेलेपन का वैभव' शीर्षक लेख से लेकर सन् 2015 में मुक्तिबोध पर लिखे 'मुक्तिबोध के उजाले में' अंतिम लेख को शामिल किया गया है। कुछ ऐसे लेख भी शामिल हैं जिनका प्रकाशन पहले हो चुका है और जिनको विभिन्न वक्तव्यों एवं व्याख्यानों में प्रस्तुत किए गए हैं। इसी वजह से इनकी स्थापनाओं में दोहराव आया है। इस पुस्तक मे अशोक वाजपेयी ने 'अज्ञेय' की कविता को समझने के विभिन्न दरवाजे बताए हैं। 'दरवाजा' अशोक वाजपेयी का बहुत ही पुराना दिलचस्प और बेजोड़ रूपक है। जिसे वे अपनी कविताओं में बार-बार प्रयोग करते आए हैं। जिसका वह गद्य में भी प्रयोग करते नजर आए हैं। 'दरवाजा' एक उम्मीद है और वह उम्मीद कविता में ही संभव हो सकती है। वे अपने कविता संग्रह 'नक्षत्रहीन समय में' की भूमिका में लिखते हैं कि 'कविता

एक मात्र दरवाजा नहीं है : मनुष्य कई दरवाजे बहुत पहले से बनाता-खोलता-खोजता जा रहा है। इधर लोग भी बढ़ गए हैं और दरवाजे भी। कविता का दरवाजा खोलना आसान नहीं होता : उसमें कुछ आपकी कोशिश भी लगती है। अज्ञेय की कविताओं के संदर्भ में लिखते हैं कि 'अज्ञेय में रचनात्मक कर्म के प्रति गर्व का भाव दिखता है और उनका मुहावरा खोज का नहीं सिद्धि प्राप्त करने का है।' वे लिखते हैं कि 'अज्ञेय आधुनिकता के जनक और अभिभावक दोनों ही थे। उन्होंने अपने समय में साहित्य कि संभावना बढ़ाने और समाज में साहित्य की जगह बनाने के लिए अथक कोशिश की है। अज्ञेय हिन्दी के अप्रतिम संस्कृत कवि हैं। उनकी उपस्थिति समकालीनता पर एक प्रश्नवाची छाया है।' 'मुक्तिबोध' की कविताओं के संदर्भ में लिखते हैं कि 'मुक्तिबोध असीमित मानवीय प्रतिबद्धता के कृतिकर हैं। वे अन्तर्लोक के भी कवि हैं। उन्होंने अन्तः करण की सजगता-सक्रियता की अवधारणा और व्यवस्था में अपनी आत्माभियोगी हिस्सेदारी का बोध जोड़ा है।' 'शमशेर बहादुर सिंह' की कविताओं के बारे में लिखते हैं कि 'शमशेर आरंभ और अंत के बीच ठिठक जाने वाले कवि हैं। शमशेर विवेक और अतिरेक के बीच में उलझे हुए कवि हैं।' तीनों कवियों की तुलना करते हुए लिखते हैं कि 'अज्ञेय' 'आत्मबोध' के कवि हैं, 'मुक्तिबोध' 'आत्मालोचन' के कवि हैं और 'शमशेर' 'आत्मविलोपन' के कवि हैं। 'अज्ञेय' 'रूप' के कवि हैं, 'मुक्तिबोध' 'विरूप' के कवि हैं और 'शमशेर' रूप की 'अनन्त संभावनाओं' के कवि हैं। अज्ञेय 'अस्तित्व' के, मुक्तिबोध 'समाज' के और शमशेर 'आत्मप्रश्न' के कवि हैं।

1.2.1 अशोक वाजपेयी के आलोचना ग्रंथों में प्रयुक्त आलोचना दृष्टि :

अशोक वाजपेयी लगभग पिछले पचास वर्षों से अनवरत रूप से साहित्य कला और संस्कृति आदि क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते आए हैं। अशोक वाजपेयी न केवल एक कवि है बल्कि एक आलोचक, संपादक और संस्कृति कर्मी के रूप में भी जाने जाते हैं। अशोक वाजपेयी की साहित्यिक यात्रा में कविता और आलोचना दोनों ही सामानान्तर रूप से चलती रही हैं। वह एक ओर जहाँ कविता में

बहुविध संसार को समेटने का कार्य करते हैं वहीं दूसरी ओर आलोचना कर्म के मार्फत कविता की समझ एवं उसकी भाषा को जानने की व्यापक दृष्टि देते हैं। वह कविता को मानवीय कर्म मानते हुए आलोचना को एक आपदधर्म मानते हैं। उन्होंने कविता और आलोचना की विभिन्न मौलिक रचनाओं के अलावा पुस्तक एवं पत्रिकाओं के सम्पादन का भी निर्वाहन किया है। अशोक वाजपेयी कवि, आलोचक और संपादक के रूप में समकालीन हिन्दी साहित्य जगत में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करते हैं तथा साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान करते हैं।

अशोक वाजपेयी की आलोचनात्मक कृतियों में 'फिलहाल' एक मील के पत्थर की तरह साबित हुई है जो अशोक वाजपेयी की आलोचना यात्रा का प्रस्थान बिन्दु भी है। 'फिलहाल' आलोचना ग्रंथ के प्रकाशन से अशोक वाजपेयी को आलोचक की प्रतिष्ठा है। 'फिलहाल' में अशोक वाजपेयी ने जिस समय कविता पर आलोचना और उसे परखने का साहस किया था वह समय हिन्दी साहित्य के मोहभंग से उपजी हुई कविता में कुंठा, निराशा, हताशा, आक्रोश आदि का समय था। ऐसे समय में कविता की सही पहचान करना और उसे समझना बहुत ही जटिल कार्य था। जब साहित्यिक आन्दोलनों की भी भरमार थी। भाषा में सतहीपन और सपाटबयानी आने लगी थी। ऐसे समय में शुद्ध कविता की खोज और उस पर अपनी आलोचना लिखना बहुत ही हिम्मत और जटिलता का कार्य था। जिसे अशोक वाजपेयी बेहद संजीदगी के साथ करते हैं।

अशोक वाजपेयी जिस तरह कविताओं में प्रेम, मृत्यु, समय, समाज और संसार को देखने-समझने की कोशिश दूसरे कवियों की कविताओं में करते हैं। वैसे ही, वह अन्य आलोचकों की आलोचना दृष्टि से भिन्न दृष्टि रख्तेव हैं। इस संदर्भ में कृष्णमोहन झा साक्षात्कार करते हुए अशोक वाजपेयी से सवाल करते हैं कि 'आप आलोचना में क्या खोजते हैं ?' इसका जवाब देते हुए अशोक वाजपेयी कहते हैं कि **"वही जो कविता में अर्थात् अपने समय में और भाषा में मनुष्य होने का अर्थ, उन अर्थों की**

व्याप्ति, उन अर्थों की संरचनाएँ : संसार के अवबोध-उसे देखने-समझने की दृष्टि । कविता के अकसर यह सीधे अपने अनुभव से और आलोचना में प्रायः दूसरों के अनुभवों से ।''[1] अशोक वाजपेयी ने जब आलोचना लेखन प्रारम्भ किया, तब उस समय आलोचना में एक उवाऊपन था । नयी कविता के कवियों कि कविताओं पर तो विचार हो रहा था लेकिन आलोचना में प्रखरता लाने के लिए ऐसी भाषा और दृष्टि की आवश्यकता थी, जो समकालीन कविता को समझ सके । ऐसे में अशोक वाजपेयी पर राममनोहर लोहिया के विचार और उनकी भाषा का काफी प्रभाव पड़ा है । इस संदर्भ में अशोक वाजपेयी एक साक्षात्कार के दौरान पंकज सिंह से बात करते हुए कहते हैं कि ''**'फिलहाल' के अधिकांश निबंध जब लिखे गये थे तब हिन्दी की अकादेमिक आलोचना बेहद उबाऊ थी । उस समय के जो नये लोग थे मसलन, धूमिल, श्रीकांत वर्मा, विनोद कुमार शुक्ल, और रघुवीर सहाय या अज्ञेय, मुक्तिबोध और शमशेर, उन पर विचार तो हो रहा था, लेकिन विचार के लिए जिन औजारों का, जिस भाषा का, मुहावरे का इस्तेमाल हो रहा था वह सब कुछ पिष्टपोषित, अकादेमिक और नीरस-सा था । मुझ पर उन दिनों राममनोहर लोहिया और उनकी भाषा-दृष्टि का प्रभाव था ।**''[2]

अशोक वाजपेयी जब शुरुआती दौर में आलोचना लिख रहे थे, उस समय हिन्दी के विभिन्न बड़े आलोचक रचनारत थे। जिनमें रमेशचंद्र शाह, मलयज, विष्णु खरे, परमानन्द श्रीवास्तव, नंदकिशोर नवल, मधुरेश, प्रभात त्रिपाठी, प्रभाकर श्रोत्रिय, देवीशंकर अवस्थी, कुमार विकल, रमेश कुंतल मेघ, लक्ष्मीकांत वर्मा, विजय देव नारायण साही, श्रीकांत वर्मा, चंद्रकांत देवताले आदि प्रमुख हैं । इन तमाम आलोचकों की काव्य आलोचनाओं में अशोक वाजपेयी का आलोचना संसार एक विस्तृत कैनवास में फैला हुआ

---

1. वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ – 41 |
2. वही, पृष्ठ - 56 |

दिखता है। अशोक वाजपेयी 'सृजनात्मक आलोचना-दृष्टि' को अपनाते हुए आलोचना कर्म करते हैं। उस समय सृजनात्मक आलोचना अपनाने वालों में रमेशचन्द्र शाह, मलयज, कुँवर नारायण आदि थे। इस सन्दर्भ में अशोक वाजपेयी एक साक्षात्कार में पुरुषोत्तम अग्रवाल से बात करते हुए कहते हैं कि **"सृजनात्मक आलोचना का मैं ही एक मात्र आलोचक नहीं हूँ रमेशचंद्रशाह ने छायावाद पर पूरी पुस्तक लिखी और उसके पूरे होने में मेरे उकसावे का भी योगदान है। मलयज ने निराला और रामचन्द्र शुक्ल पर काम किया। कुँवर नारायण ने भी अपने वरिष्ठों पर लिखा।**"[1] अशोक वाजपेयी की आलोचनात्मक दृष्टि 'सृजनात्मक आलोचना' की रही है।

1.3 अन्य साहित्यिक विधाएँ :

अशोक वाजपेयी ने कवि, आलोचक, संपादक और संस्कृति कर्मी होने के साथ-साथ साहित्य की विविध विधाओं में भी कारगर हस्तक्षेप किया है। अशोक वाजपेयी का साहित्यिक संसार बहुत ही व्यापक है। जिसमें उनके कविता संग्रहों में 'शहर अब भी संभावना है' सन् 1966 ई. से लेकर 'नक्षत्रहीन समय में' सन् 2016 तक अशोक वाजपेयी के 15 काव्य-संग्रह हैं। इन्हीं 15 काव्य-संग्रहों में से कविताओं को चयनित कर विभिन्न काव्य-संकलनों को भी तैयार किया गया है जिनमें-

- घास में दुबका आकाश, (चुनी हुई कविताएँ), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,वर्ष-1994 ई.।
- जो नहीं है, (मृत्यु और अनुपस्थिति पर कविताएँ), वर्ष-1996 ई.।
- तिनका-तिनका, (दो खण्ड), प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-1996 ई.।
- उम्मीद का दूसरा नाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष- 2004 ई.।
- दीर्घयामा, (लंबी कविताओं का संचयन), सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर, वर्ष- 2009 ई.।

---

1. वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ – 141 ।

- खुल गया है द्वार एक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष- 2014 ई.।
- कवि ने कहा, (चुनी हुई कविताएँ), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष- 2014 ई.।
- पुरखों की परछी में धूप।
- मंदिर एक उजाला बनाता है' आदि हैं।

गद्य रचनाएँ:-

- यहाँ से आगे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष- 2011 ई. ।
- कुछ खोजते हुए , वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष- 2012 ई.।
- पुनर्भव, सूर्य प्रकाशन मंदिर बीकानेर, राजस्थान, वर्ष- 2013 ई.।

अनुदित रचनाएँ :-

'हमारे और अंधेरे के बीच', वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, वर्ष- 2011 में चार पोलिश कवि तादेऊष रुजेविच, चेस्लाव मीलोष, ज्वीग्न्येव हेर्बेर्त, वीस्चावा, षिम्बोर्स्का की कविताओं का हिंदी में अनुवाद किया गया है।

संपादित पुस्तकें :-

तीसरा साक्ष्य (1979), साहित्य विनोद (1984), पुनर्वसु (1989), टूटी हुई पिखरी हुई (1990), निर्मल वर्मा (1990), कविता का जनपद (1993), अज्ञेय का संसार : शब्द और सत्य (1993), कला विनोद (1996), जैनेन्द्र की आवाज (1996), परंपरा की आधुनिकता : हजारी प्रसाद द्विवेदी (1997), उमंग (2012), पाव भर जीरे में ब्रह्मभोज (2012), गजानन माधव मुक्ति बोध की चुनी हुई कविताएँ,

शमशेर बहादुर सिंह की चुनी हुई कविताएँ, अज्ञेय की चुनी हुई कविताएँ, आदि पुस्तकों का संपादन किया है।

साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन :-

1. समवेत (1958-59), 2. पहचान (1970-74), 3. पूर्वग्रह (1974-1990), 4. बहुवचन (1990), 5. कविता एशिया (1990), 6. समास (1992), 7. द बुक रिव्यू।

पत्र-साहित्य :-

अपने दूसरे, सूर्य प्रकाशन मंदिर बीकानेर राजस्थान से वर्ष 2015 में प्रकाशित है जिसमें सन् 2015 ई. तक अशोक वाजपेयी के द्वारा साहित्यकारों तथा अशोक वाजपेयी के लिए लिखे गये समग्र पत्रों का संचयन है।

साक्षात्कार :-

मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-1998 ई.।

द्वितीय अध्याय

‘कहीं कोई दरवाजा’ : अंतर्वस्तु एवं दर्शन

‘कहीं कोई दरवाजा’ काव्य-संग्रह की ‘अंतर्वस्तु एवं दर्शन’ का अध्ययन करने के लिए सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक होगा कि ‘अंतर्वस्तु एवं दर्शन क्या है ?’ पत्पश्चात् ‘कहीं कोई दरवाजा’ काव्य-संग्रह की ‘अंतर्वस्तु एवं दर्शन’ का अध्ययन करना समीचीन होगा। अंतर्वस्तु भी किसी रचना का मूल आधार होती है जिसमें रचना की मूल संवेदना अर्थात रचनाकार क्या कहना चाहता है ? समाहित रहता है। अंतर्वस्तु रचना का आत्म-तत्त्व होती है। ‘अंतर्वस्तु एवं दर्शन’ के अंतर्गत प्रस्तुत काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ की कविताओं में व्यक्त चेतना का अध्ययन करना होगा है। ‘अंतर्वस्तु एवं दर्शन’ के अंतर्गत हम ‘कहीं कोई दरवाजा’ काव्य-संग्रह की कविताओं में व्यक्त विचार एवं उसकी मूल संवेदना का अध्ययन करेंगे। अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ की ‘अंतर्वस्तु एवं दर्शन’ का अध्ययन करने की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इसे तीन उप-अध्यायों में बिभाजित किया गया है। प्रथम उप-अध्याय में ‘समाज, संस्कृति और दर्शन’, द्वितीय उप-विभाग में ‘प्रकृति और प्रेम-सौन्दर्य’ तथा तृतीय उप-विभाग में ‘मानवीय मूल्य और संवेदना’ है।

2.1 समाज, संस्कृति और दर्शन :

साहित्य समाज के क्रियाकलापों का भाषा में लिखित प्रतिरूप होता है क्योंकि समाज में जो भी घटनाएँ घटित होती रहती हैं उसे अपनी भाषा में बुद्धि, कल्पना के परस्पर सहयोग से वास्तविकता का सामंजस्य स्थापित करने का कार्य साहित्यकार करता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल साहित्य के इतिहास को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि ‘**जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों**

का संचित प्रतिबिंब होता है’ इसी बात को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि साहित्य हमारे समाज का प्रतिरूप होता है। साहित्य को हम समाज से इतर नहीं मान सकते क्योंकि साहित्य में वही रचा जाता है जो समाज में घटित मानव समाज की प्रक्रिया में होता है। साहित्यकार समाज के अंदर चल रही विभिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाओं को अपनी भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

व्यक्ति और समाज का संबंध एक अमूर्त रूप में होता है क्योंकि समाज भावना है और वह एक अमूर्त है। भावना इस अर्थ में कि समाज में एक दूसरे के प्रति सहयोग एवं साथ रहने का भाव है, जो मनुष्यता का प्रतीक है। व्यक्ति समाज के अवयव के रूप में रहता है और समाज के सभी व्यक्ति सिर्फ एक जैसी विचारधारा के नहीं होते बल्कि विविध मानसिकता से भरे हुए व्यक्तियों का समन्वय है, जो एक व्यापकता के साथ समाज के रूप में परिलक्षित होता है। ‘समाज’ को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। डॉ. नगेंद्र समाज को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि “**समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के विभिन्न जाने-अनजाने कार्य कर लेते हैं।**”[1]

विश्वनाथ प्रसाद वर्मा मनुष्य को समाज की महत्वपूर्ण इकाई मानते हुए लिखते हैं कि “**मानव समाज की इकाई है और समाज के बिना वह पूरा विकसित मनुष्य नहीं हो सकता।**”[2] जी. के. अग्रवाल की पुस्तक ‘मानव समाज’ में समाज को परिभाषित करते हुए मॉरिस गिन्सवर्ग लिखते हैं कि ‘समाज ऐसे व्यक्तियों का संग्रह है जो कुछ संबंधों व्यवहार की विधियों द्वारा संगठित तथा उन व्यक्तियों से भिन्न है जो इस प्रकार के संबंधों द्वारा बंधे हुए नहीं हैं अथवा जिनके व्यवहार उनसे भिन्न है।’ वहीं मैकाइबर एवं पेज समाज को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि “**समाज रीतियों कार्यविधियों अधिकारों व पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों तथा उनके विभाजनों, मानव व्यवहार के**

---

1. राव, गोविंद, आठवें दशक के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, मराठवाडा विश्वविद्यालय, 2006, पृष्ठ – 18।
2. वही, पृष्ठ – 16।

नियंत्रणों तथा स्वतंत्रताओं की व्यवस्था है । इस सदैव परिवर्तित होने वाली तथा जटिल व्यवस्था को हम समाज कहते हैं । यह सामाजिक संबंधों का जाल है और सदैव परिवर्तित होता रहता है ।"[1] अशोक डी. पाटिल व एस. एस. भदौरिया 'समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ' नामक पुस्तक में समाज को परिभाषित करते हुए एच. डब्ल्यू. ओडम के शब्दों में लिखते हैं कि 'समाज को मनुष्य के व्यवहार और उत्पन्न संबंधों, समस्याओं और सामंजस्य की प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है । गिलिन समाज को तुलनात्मक रुप से सबसे बड़ा और स्थाई समूह मानते है जो सामान्य हितों, सामान्य भू-भाग, सामान्य रहन-सहन तथा पारस्परिक सहयोग कि भावना से निर्मित होता है ।' सी.एच.कूले का मानना है कि 'समाज व्यवहारों या प्रतिक्रियाओं की जटिलता है जो कि पारस्परिक क्रियाओं से उत्पन्न होती है । यह जटिलता इस प्रकार एकीकृत है कि इसके एक भाग में जो कुछ घटित होता है वह शेष सभी को प्रभावित करता है ।'

साहित्य मनुष्य की भावनाओं एवं विचारों को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने का सबसे सुन्दर और सहज तरीका है । साहित्य के माध्यम से हम स्वतंत्र रूप से अपनी बात को प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं क्योंकि साहित्य रचना में किसी भी प्रकार का बंधन नहीं होता है । साहित्य से मानवीय एवं सामाजिक गुणों का विकास होता है क्योंकि किसी भी देश का साहित्य उस देश या समाज की संस्कृति, इतिहास, दर्शन, राजनीति, आर्थिक दशा का स्पष्ट चित्रण होता है, जिससे हम उस देश के बारे में अच्छी तरह से परिचित हो सकते हैं । साहित्य में हम वही रचते हैं जो हम वास्तविक जीवन से अनुभूत करते हैं । माना कि साहित्य में कल्पनाओं का भी समावेश रहता है । लेकिन जो वर्तमान समय में रचा जा रहा साहित्य है उसमें यथार्थ जीवन का चित्रण दृष्टिगोचर होता है क्योंकि इसमें अनुभूति को अधिक महत्व दिया जा रहा

---

1. अग्रवाल, जी. के.. मानव समाज. आगरा : आगरा बुक स्टोर, 1985, पृष्ठ – 91 |

है। वर्तमान में हम जिन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि परिस्थितियों से गुजर रहे हैं। उसे अपने विचारों, शब्दों के माध्यम से अपनी भाषा में रचते जा रहे हैं।

साहित्य और समाज के एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों के सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि **"साहित्य समाज से प्रभावित ही नहीं होता उसे प्रभावित भी करता है।"**[1] हम जिस भौतिक समाज में जीवन यापन करते हैं वह सीमित है। हम जिस समय और समाज में रहते हैं उसके परे नहीं जा सकते लेकिन साहित्य हमें अपने देशकाल की सीमाओं से भी पार जाने की अनुमति और संबल प्रदान करता है। साहित्य हमारे समाज की विकृतियों, कुरीतियों आदि की पड़ताल कर उन्हें सुधारने का कार्य करता है साथ ही उन तमाम विकृतियों को दूर करने के मार्गों को भी प्रशस्त करता है। साहित्य हमारे समय और समाज की नग्न तस्वीर पेश करता है जिसे हम अपनी खुली आँखों से देख सकते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन पश्चात् हम कह सकते हैं कि समाज मनुष्य के द्वारा बनाए गए संबंधों, क्रिया व्यवहारों, रहन-सहन, मानवीय एकता एवं सुनिश्चित व्यवस्था और व्यक्तियों की जटिल समस्याओं में सामंजस्य स्थापित कर व्यक्ति जीवन को एक सुनिश्चित जीवन यापन के लिए बेहद जरूरी आधार प्रदान करता है। समाज मानवीय संबंधों का एक ऐसा जाल है जिसमें व्यक्ति अपने परिवार, पड़ोसी, नाते-रिश्ते आदि से हमेशा अपना संबंध स्थापित किए रहता है। समाज व्यक्ति को मनुष्यता के धरातल पर खड़ा करने का सफलतम प्रयास करता है। व्यक्ति जो भी कुछ क्रियाकलाप या व्यवहार करता है वह अपने समाज के इर्द-गिर्द ही रहकर करता है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे के समपूरक हैं

2.1.1 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में 'समाज':

अशोक वाजपेयी अपने काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में एक ऐसे समाज की रचना करते हैं जिसमें संस्कृति, संवेदना और मूल्यों को बचाए रखने का साहस नहीं रह गया है। इस

1. पाण्डेय, मैनेजर. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूला : हरियाणा ग्रंथ अकादमी, 2014, पृष्ठ - 138।

काव्य-संग्रह की कविताओं में रचा समाज कवि का कोई काल्पनिक समाज नहीं है बल्कि वास्तविक समाज है जो शब्दों और भाषा के माध्यम से कविता में अभिव्यक्त हुआ है। वर्तमान भारतीय समाज ने जिस तेजी से पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण किया है। उसका सीधा प्रभाव समाज में भी देखने को मिल रहा है। पश्चिमी सभ्यता के प्रभावों से भारतीय समाज भी काफी हद तक प्रभावित हुआ है। आज विज्ञान, तकनीकि आदि के विकास और पारस्परिक सम्बन्धों के कम होने से आज का मनुष्य सिर्फ अपने बारे में ही सोचता है। समाज में रहने वाले लोग आज यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि हम एक-दूसरे के साथ सामंजस्य बनाये रखें। आज का मनुष्य सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए काम करता है। जिससे सामाजिकता का भाव धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। इसी असामाजिक होते हुए समाज को अशोक वाजपेयी अपनी कविता का विषय बनाते हैं और बढ़ रही बाजारवाद की चकाचौंध एवं असामाजिक को अपनी कविता में रचते हैं। आज आधुनिकीकरण के प्रभाव से व्यक्तियों में समाज के प्रति संवेदनाएँ नष्ट होती जा रही हैं और असामाजिकता बढ़ती जा रही है। ऐसे में अशोक वाजपेयी इस बढती हुई असामाजिकता के खिलाफ कविता में सामाजिक संबंधों की पड़ताल करते हैं। जो सामाजिक सम्बन्ध टूटने की कगार पर हैं उन्हें बरक़रार रखने का भी आह्वान करते हैं और जो सबंध टूट चुके हैं उन्हें पुनः स्थापित करने का प्रयास करते हैं। 'करो प्रार्थना' कविता में लिखते हैं कि-

> **"करो प्रार्थना**
> **कि हरी पत्तियाँ कुछ दिन और हरी रहें,**
> **पक्षियों कि आयु कुछ लम्बी हो**
> **बहुतों के घर-जीवन में इतनी देर अँधेरा न रहे।**"[1]

अशोक वाजपेयी की कविता में सामाजिक यथार्थता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। उनकी कविता पूरी समग्रता की कविता है जिसमें समाज भी है और संस्कृति भी। उन्होंने अपनी कविताओं में सामाजिक

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 81।

सन्दर्भों की पड़ताल निरंतर जारी रखी है। समकालीन समाज में मनुष्य विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा है। 'तेजी से क्यों' कविता में अशोक वाजपेयी ने सामाजिक यथार्थ को बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रित किया है। वर्तमान मनुष्य के पास धैर्य, हुनर नहीं रह गया है और किसी कार्य को करने की इतनी फुर्सत नहीं बची है कि उसे ढंग से कर सकें। हम अपने समय को गवां चुके है और जो बचे हुए लोग हैं वह भी गंवाते जा रहे हैं। इस संपूर्ण कविता में अशोक वाजपेयी ने समय और समाज पर चिंता जाहिर की है। आज हम एक ऐसे समाज में जीने के लिए विवश है जहाँ पर हजारों लोगों की बिना कुछ कारण ही हत्या कर दी जाती हैं। हम उसे चुपचाप देखते-सहते रहते हैं। कुछ समय पश्चात भूल जाते हैं लेकिन कुछ समय के लिए उन्हें खबर के तौर पर वृत्तांत और पुस्तकों में देखते-पढ़ते हैं। एक समय बाद हम उन्हें स्मृति के किसी कोने में डाल देते है जैसे कुछ हुआ ही न हो। वह कविता में लिखते हैं कि-

"जिसे देर-सबेर
धो-पोंछकर मिटा दिया जाएगा।
यह बना रहेगा कुछ देर
वृत्तान्तों और संस्मरणों कि पुस्तकों में
जिन्हें फिर देखना-पढना बंद हो जाएगा।"[1]

हम उन्हें याद करना भी भूल जाते हैं। यह हमारे समाज की बहुत बड़ी बिडंबना है कि हमारी आँखों के सामने मनुष्य, मनुष्य की सरेआम हत्या कर देता है। ऐसा कभी- कभार नहीं होता बल्कि आए दिन चलता रहता है। फिर भी कोई कुछ नहीं बोलता शायद इसलिए कि उन्हें भय रहता है, कि उन नरसंहारों का जिक्र करने से खतरा हो सकता है। हम धीरे-धीरे भूलते चले जाते हैं क्योंकि भूलना अब हमारे समाज के मनुष्य की आदत बन गया है। हमारे पास इतना साहस नहीं रह गया है कि विगत में हुई

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 24 |

घटनाओं को याद रख सकें। किसी बात को भूलकर कुछ समय के लिए हम उससे पीछा तो छुड़ा सकते हैं परन्तु अपनी स्मृति से नहीं मिटा सकते। अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि-

"हम भूलते हैं
क्योंकि भूलना हमारे समय की आदत बन गया है
हम भूलते हैं
क्योंकि वैसा कर हम अपना पल्ला झाड सकते हैं।"[1]

अशोक वाजपेयी कि कविताओं के अध्ययन से परिलक्षित होता है कि हमारे समय और समाज के मनुष्यों में किसी को स्मृतियों में धारण करने की क्षमता नहीं रह गई है। वह किसी बात या किसी को स्मृति में रखना पसंद नहीं करते हैं। हमारे पास इतनी सारी अच्छी बुरी बातों का भंडार हो गया है कि हम किसी अच्छी बात या चीजों को भी याद नहीं करना चाहते क्योंकि आज का मनुष्य किसी को याद करना अपने आप को गुनाह में शामिल करने जैसा मानता है। हमारे समाज के लोगों की समस्या यह नहीं है कि उनके पास पर्याप्त समय नहीं है बल्कि उन्हें उसी थोड़े से समय में इतने सारे काम एक साथ करने हैं जिनकी संख्या बहुत है। आज के समाज में जिजीविषाएँ इतनी बढ़ गई हैं कि हम कोई भी काम मुक्कमल रूप से तय नहीं कर पाते। कवितांश है-

"जिस अनन्त वर्तमान में रहने को अब हम विवश हैं
उसमें स्मृति की जगह नहीं बची है,
याद करना अपने को गुनाह में शामिल करना है।"[2]

'छाता' कविता में अशोक वाजपेयी छाता को समाज का प्रतीक मानते हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के लोग समाज की छाँव में रहते हैं। समाज एक ऐसा छाता है जो व्यक्ति के अच्छे-बुरे वक्त में भी साथ

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 25 |
2. वही, पृष्ठ – 25 |

नहीं छोड़ता जब कभी कोई समस्या आती है तब वह समाज ही है, जो व्यक्ति के अस्तित्व को बनाये रखने का संबल प्रदान करता है। समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। क्योंकि समाज में रहकर मनुष्य के मानवीय गुणों का विकास संभव होता है। हम चाहे कितने ही वैयक्तिक क्यों न हो जाये परंतु समाज से अलग नहीं हो सकते है। दूसरे अर्थ में देखें तो हम पाते हैं कि आर्थिक उन्नति एवं आधुनिक संस्कृति के प्रचलन ने हमारे समाज से छोटी-छोटी चीजों के मूल्यों को बहुत ही प्रभावित किया है। आज हम उन चीजों को ही हिफ़ाजत से रखते हैं जो रोजमर्रा के काम आने वाली हैं बाकि अन्य चीजों को नजरअंदाज कर जरूरत पड़ने पर ही तलाशते हैं। यह कविता हमारे समाज की चीजों के प्रति बढ़ रहे अलगाव को प्रकट करती है –

"अगर धूप तेज हवा और बारिश न हो
तो किसी को याद नहीं रहता
कि छाता कहाँ दुबका पड़ा है।"[1]

'शुरुआत की अँधेरी शाम' कविता में कवि अशोक वाजपेयी ने समाज में व्याप्त आधुनिक संस्कृति के बढ़ते हुए अँधेरों की ओर संकेत किया है। वह कहते हैं कि आज का मनुष्य इनमें ऐसा फँसता चला जा रहा है जहाँ से वापिस लौट पाना असंभव है। हम ऐसे रास्तों का निर्माण करते चले जा रहे हैं जिन पर निर्बाध रूप से गुजर जायेंगें। कविता का अंश दृष्टव्य है-

"हम सब एक मार्ग हैं
जिस पर से सब कुछ को
निर्बाध गुजर जाना है।"[2]

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 12।
2. वही, पृष्ठ – 26।

अशोक वाजपेयी कहते हैं कि हम इतनी तेजी से चल रहे हैं कि पीछे मुड़कर देखना खतरे से खाली नहीं रह गया। हम आज एक ऐसे प्रार्थना हीन समाज में रह रहे हैं जहाँ पर पवित्रताएँ नष्ट हो चुकी हैं। जिन्हें हम अनंत तक अक्षत मानते थे वह अब विक्षत हो गई है। हमारे पास में रहने वाला पड़ोसी घर छोड़कर चला गया है और हम उसके पड़ोस में ही बने रहे। अशोक वाजपेयी समाज के टूटते हुए आपसी संबंधों की बात करते हैं। किसी को यह पता ही नहीं चल पाता कि हम जिस समाज में रहते हैं उसकी कोई खबर भी है। हम इतने वैयक्तिक होते जा रहे हैं कि महज अपने ही कामों में मशगूल रहते हैं। हम अपने समाज में रहने वाले पड़ोसी की भी खबर नहीं रखते। धीरे-धीरे कितना कुछ बदलता रहता है कुछ भी समझ नहीं पाते। हम जिन रास्तों को बनाते जा रहे हैं उन पर वापिस लौटना हमारे लिए अब संभव नहीं रह गया है-

"कोई नहीं लौटता
जो जाने के लिए बना है
उस पर लौटा नहीं जा सकता
लौटने के रास्ते हम अभी तक बना नहीं पाए हैं।"[1]

'मित्रहीन आकाश' कविता में अशोक बाजपेयी कहते हैं कि आज का मनुष्य एक ऐसे मित्रहीन समाज में जी रहा है जहाँ पर मित्रों के लंबे समय तक बने रहने की उम्मीद अब कम हो गई है। क्योंकि आज का जो समय है, यह जल्दबाजी का समय है जिसमें सभी को जल्दी से जल्दी जाने की पड़ी रहती है। अपनी विफलताओं के प्रति मन में इतना खेद भरा हुआ है कि हम अपने मित्रों को भी भूलते जा रहे हैं। अपने समय के अच्छे से अच्छा आदमी बनने और किसी व्यक्ति के सामने अपने आप को सभ्य या महान साबित करने के लिए इतनी जल्दबाजी करते हैं कि समस्त मित्र छूट जाते हैं। वह कविता में लिखते हैं कि "धीरे-धीरे सब मित्र छोडकर चले जाएँगे" आज का मनुष्य बहुत ही स्वार्थी हो गया है। वह किसी भी

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 27।

व्यक्ति से बिना किसी स्वार्थ के मित्रता ही नहीं करता। उसकी मित्रता में किसी न किसी प्रकार का स्वार्थ भाव जरूर छिपा रहता है। इस संदर्भ में अशोक वाजपेयी कविता में लिखते हैं कि-

"कुछ इसलिए कि उन्हें तुमसे अब कोई लाभ नहीं मिल सकता था।"[1]

अशोक वाजपेयी की कविता वर्तमान समय में मनुष्यों के कमतर होते जा रहे संबंधों पर खेद जताती है। अशोक वाजपेयी अपनी कविता में बढ़ती हुई व्यक्तिवादी सोच को इंगित करते हैं। आज के उपभोक्तावादी समाज में व्यक्तिवादी होते जाना समाज के लिए एक बड़ा भारी संकट है। सामाजिकता और मनुष्य को बरकरार रखने के लिए अशोक वाजपेयी अपनी कविता में कृत संकल्पित हैं। आधुनिकीकरण और वैज्ञानिक आविष्कारों ने हमें सुविधाएँ तो प्रदान की हैं लेकिन उसके बरक्स मानव जीवन के लिए भारी संकट भी पैदा किए हैं। विज्ञान और संचार के साधनों के विकास ने विश्व को एक गाँव बना दिया है लेकिन हमारे अपनों से ही बहुत दूर भी कर दिया है। मनुष्य का मनुष्य से सीधा संवाद ख़त्म होता जा रहा है। हम अपने समय और समाज को इतने पीछे छोड़ते जा रहे हैं जैसे हमारा समाज से कोई सम्बन्ध ही न हो। आज का मनुष्य वर्तमान को सबकुछ मानने लगा है। हम अपने अतीत को, अपने इतिहास को भूलते जा रहे हैं। हमारा समय लगातार शब्दों और भावों के कमतर होने का समय है। जहाँ हमारी भावनाएँ क्षीण होती जा रही हैं। मनुष्य का समाज के प्रति लगाव छूटता जा रहा है। हम समाज से ऐसे कटते जा रहे हैं जैसे हमारा समाज से कोई संबंध ही न हो। हम लगातार विफलताओं का सामना कर रहे हैं, इन विफलताओं के पीछे हमारे चारों ओर फैली आधुनिकतावादी मानसिकता है जिसमें व्यक्ति की जिजीविषाएँ लगातार बढती जा रही हैं। जिससे हम बच नहीं सकते। बचेगा सिर्फ यह मित्रहीन आकाश। समाज में व्याप्त इन तमाम समस्याओं को अशोक वाजपेयी अपनी कविता के केंद्र में लाते हैं। वह कविता में लिखते हैं कि-

"जो बचेगा मित्रहीन आकाश

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 30।

उस पर खिड़की बंद कर

तुम बुदबुदाओगे 'अलविदा, मित्रों'

और अपनी मटमैली मेज पर पड़े

कुछ कागजों को सहेजोगे

जिन पर कुछ लिखना

बहुत दिनों तक मुमकिन नहीं होगा।"[1]

अशोक बाजपेयी न केवल वर्तमान समय के कवि हैं बल्कि समय के आर-पार के कवि हैं। आर-पार कहने से मेरा तात्पर्य यह है कि वह सिर्फ वर्तमान या भविष्य को ही अपनी कविताओं में नहीं रचते बल्कि उनकी कविताएँ अतीत से भी गहरा सरोकार रखती हैं क्योंकि उनके यहाँ अतीत से भी गहरा लगाव देखने को मिलता है न कि समय के गुजर जाने पर उस से मुँह मोड़ लेना है।

'हम वहीं लौटकर क्यों नहीं' कविता के मार्फ़त अशोक वाजपेयी अतीत की ओर लौटने का आह्वान करते हैं। वे समय और समाज के अतीत की ओर लौटने का आशय यह नहीं मानते कि हम पुराने समय की सभ्यता को अपना लें बल्कि हम जो अपनी सामाजिक मान्यताएँ एवं संस्कृति आदि को पीछे छोड़ आए हैं उन्हें बरकरार रखें। आज आधुनिकतावादी युग में सभ्यता के विकास के नाम पर हम सब कुछ को रौंदते हुए निरंतर आगे बढ़ रहे हैं जिससे हमारी संस्कृति और समाज की मान्यताएँ लगातार पीछे छूटती जा रहीं हैं। आज बड़े-बड़े शॉपिंग मॉल सिर्फ शहर को ही नहीं बल्कि गांव को भी प्रभावित कर रहे हैं। जिसके चलते बाजारीकरण को विस्तार मिला है। हम अपने पड़ोस की दुकान से कुछ भी सामान खरीदना मुनासिब नहीं समझते हैं। इससे समाज के छोटे-छोटे दुकानदारों की आजीविकाएँ नष्ट होने की कगार पर आ चुकी हैं। वे कविता में लिखते हैं कि-

"उस सड़क पर खुलने वाला वह दरवाजा नहीं रहा,

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 31।

बगल की सिंधी की दुकान कब की बन्द हो चुकी है।"[1]

हम अपनी इंसानियत और मनुष्यता नष्ट करते जा रहे हैं। कल तक जो सामान हम एक छोटी-सी दुकान से खरीदते थे उसमें मानवीय प्रेमभाव का सम्बन्ध जुड़ा रहता था। ऑनलाइन शॉपिंग ने मनुष्य का मनुष्य से सीधा सम्बन्ध समाप्त कर दिया है। इस प्रकार की व्यवस्था ने मानवीयता और सामाजिकता को नष्ट होने की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है जिससे हम समाज में रहते हुए भी सामाजिक संबंधों को तोड़ते जा रहे हैं। मानाकि इन व्यवस्थाओं से सुविधाएँ बड़ी हैं लेकिन जो मनुष्य और मनुष्य का संबंध था या बनाए रखे थे वह धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। पहले हम अपने मित्रों से एक ही चौपाल पर कई घंटों बात करते थे। एक साथ मिलकर उनसे सुख-दुख बाँटते थे। आज के मनुष्य में इतनी लालसाएँ बढ़ गईं हैं कि व्यक्ति के पास इतना समय ही नहीं रह गया कि वह अपने मित्र को थोडा सा वक्त दे सके। आज मनुष्य का मनुष्य से जुडने वाला सीधा संबंध टूट गया है। विज्ञान के विभिन्न चमत्कारों ने सुविधाएँ उपलब्ध कराईं हैं। जैसे-मोबाइल और इंटरनेट ने सोशल मीडिया के माध्यमों से मनुष्य करीब आया है परन्तु हम अपने पड़ोस से बेखबर होते जा रहे हैं। यह हमारे समाज की बहुत बड़ी विडंबना है कि हम अपने समाज से ही अलग होते जा रहे हैं। समाज और मनुष्य के संबंधों में निरंतर होने वाली कमी को अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में महसूस करते हैं तथा मनुष्य और समाज के संबंधों को अपनी कविता में जोड़ने का प्रयास करते हैं-

"समय उन्हें अपनी गाड़ी में भरकर
कब का कूड़ाघर में फेंक चुका-
हम ही बचे हैं :
जो गैब होने की कगार पर
सोच रहे हैं :

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 31।

हम वहीं लौटकर क्यों नहीं आ सकते ?"[1]

अशोक वाजपेयी नाउम्मीद के बरक्स उम्मीद के कवि हैं क्योंकि वह अपनी कविताओं में जो असंभव है उसमें भी कुछ संभव हो सकने की उम्मीद करते हैं। जिस समय और समाज में प्रेम, करुणा और समय की कोई कीमत न रह गई हो वहाँ पर अशोक वाजपेयी की ये कविताएँ उन तमाम बंद हो गये दरवाजों पर खुल सकने की उम्मीद में दी गई दस्तक हैं। इस संदर्भ में काव्य-संग्रह कि भूमिका में वह लिखते हैं कि कविता दरवाजे के होने और उसके खुल सकने कि उम्मीद में दी गई दस्तक हो सकती है।

'कैसे' कविता में एक गहन आशावादी कवि की झलक स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है जिसमें अशोक वाजपेयी 'मैंने' कविता में किए गए प्रश्न 'अब थोड़ी-रोशनी / बहुत सारे अँधेरे / और थोड़े से विलाप के अलावा अब बचा क्या है ?' का जबाव देते हुए कहते हैं कि 'संसार अभी बहुत सुन्दर है जिसमें हम बहुत कुछ अच्छा कर सकते हैं।' अशोक वाजपेयी आज के घोर निराशावादी समय में भी अपनी कविताओं में आशाओं के दीप जलाने का काम करते हैं कि हम अभी-भी अपने समाज की मान्यताएँ, संस्कृति और समाज को बचा सकते हैं। हम अपनी स्मृतियों में उसे पुनः धारण कर सकते हैं कि चलो अब तक जो हुआ सो हुआ लेकिन अभी भी हमारे पास संभलने का अवसर है। यह हमारे शब्दों के कम होने का समय है तो बहुत सारी चुप्पियों के मुखरित होने का भी समय है। अभी स्वार्थ का वर्चस्व इतना नहीं बड़ा है कि 'मनुष्य' मनुष्य की मदद के लिए हाथ न बढ़ाए। अभी तो बहुत कुछ रह गया है। अभी मैंने बचपन खेला कहाँ है अर्थात अभी हमारे समाज ने नया जन्म लिया है। नए समाज से आशय आधुनिक समाज से है। यहाँ इस कविता में अशोक वाजपेयी गहरे नाउम्मीद के समय में भी असम्भव के संभव हो सकने की उम्मीद अपनी कविता में करते हैं। प्रायः आज के समकालीन कवियों ने अपनी कविता में ये सब करना छोड़ दिया है। इस दृष्टि से देखा जाये तो समकालीन हिन्दी कविता में

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 59।

अशोक वाजपेयी एक मात्र ऐसे कवि हैं जो नाउम्मीद के बरक्स उम्मीद की कविता रचने का हौसला रखते हैं। वे कविता में लिखते हैं कि-

"अभी संसार बेहद और सुंदर है-
अभी बहुत सी चुप्पियों को मुखर होना है –
अभी बहुत सारे लोग मददगार और भले हैं –
अभी मैंने अपना बचपन खेला कहाँ है !"[1]

'कहीं कोई दरवाजा खुलता है' शीर्षक कविता में अशोक वाजपेयी वर्तमान समय और समाज में व्याप्त विद्रूपताओं की ओर इशारा करते हैं। हमारे समाज में बढ़ते हुए आतंकवाद से हजारों-लाखों चीखों और विलाप करते हुए मनुष्य हैं जिनकी अनंत पुकारें है, लहु रिसती आत्माएँ हैं और उसी आत्मा के अरण्य में समस्त जगत की मुक्ति की प्रार्थनाएँ भी हैं। अशोक वाजपेयी इस गहन अंधकारयुक्त समय में जिसे चकाचौंध ढाँपती जा रही है उसको अशोक वाजपेयी अपनी कविता में अभिव्यक्त करते हैं -

"गहरे नाउम्मीद अँधेरे में
चीख़ों, विलापों और पुकारों के घमासान से
उठता है एक लहूलुहान
लेकिन हर न मानने वाला शब्द;"[2]

यह गहरे अँधेरे की चकाचौंध आधुनिकीकरण और पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण की है। जिसमें मनुष्यता के दरवाजे बंद हो चुके हैं। ऐसे में उन बंद हो गये दरवाजों पर इस उम्मीद में दस्तक देते हैं कि शायद कविता में खुल जाएँ। यहाँ 'दरवाजा' समाज में बढती हुई असामाजिकता, अमानवीयता,

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 68 |
2. वही, पृष्ठ – 86 |

बाजारीकरण, भ्रष्टाचार, आतंकवाद के खिलाफ एक दस्तक है। यह उम्मीद के साथ दी गई दस्तक अशोक वाजपेयी की कविताओं को सार्थकता प्रदान करती है-

“चकाचौंध के फिसलन-भरे गलियारों में
अपने को जन-बूझकर अनसुना करने वाला
एक विलाप ;
कहीं कोई दरवाजा खुलता है।”[1]

‘इतना वक्त कहाँ था’ कविता में अशोक बाजपेयी कहना चाहते हैं कि हम इतनी जल्दी में हैं कि हमारे द्वारा किए गए कार्य को संतुष्ट रूप में देख पाने का हमारे पास समय नहीं रह गया है। उल्टा-सीधा जैसा बन पाया निपटा दिया और उससे मुक्त हो गये। यह नहीं जानते कि दुनिया महज हम से ही नहीं चल रही है बल्कि दूसरे लोगों के सामाजिक बने रहने से चल रही है। हम जिन छोटी-छोटी चीजों को लगातार दरकिनार करते जा रहे हैं उन्हीं तमाम छोटी-छोटी चीजों से ही हम अपना संसार रचते हैं। अशोक वाजपेयी चिंता जाहिर करते हैं कि हम ऐसी बहुत सारी चीजों को अपने समय और समाज से छोड़ते जा रहे हैं जिन्हें दोबारा पाना बहुत ही मुश्किल हो जाएगा और आगे चलकर हमें जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ेगा। वह कविता में लिखते हैं कि-

“हमें पता चल पाता
कि हमारा संसार हमसे ज्यादा
बहुत सारे दूसरों से बना है,
हम जिसे अनदेखा करते हैं
वह हम पर हावी होने वाला है।”[2]

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 86।
2. वही, पृष्ठ – 100।

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ की कविताओं में समाज में बढ़ते हुए असामाजिक तत्वों की पड़ताल करते हैं । वे अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में व्याप्त निराशावादिता के बरक्स आशावादिता पर बल देते हैं। मनुष्य के निपट वैयक्तिक होते जाने पर चिंता व्यक्त करते हैं और उसे सामाजिक होने के लिए अपनी कविता के माध्यम से प्रेरित करते हैं। वे अपनी कविताओं में सामाजिक यथार्थ की व्याख्या करते हैं। एक ऐसे समाज की जहाँ मनुष्यता धीरे-धीरे लगातार कम होती जा रही है। इस सन्दर्भ में देखा जाये तो अशोक वाजपेयी की ये कविताएँ समाज की पुनर्स्थापनाएँ करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं।

2.1.2 ‘कहीं कोई दरवाजा’ काव्य-संग्रह की कविताओं में ‘संस्कृति’:

‘संस्कृति’ शब्द संस्कृत की ‘कृ’ धातु से ‘क्तिन’ प्रत्यय और ‘सम’ उपसर्ग जोड़कर बना है। ‘कृति’ का अर्थ मनुष्य द्वारा निर्मित किया हुआ। अंग्रेजी में इसे **‘CULTURE’** कहते हैं। डॉ. हरदेव बाहरी ने ‘संस्कृति’ शब्द का अर्थ “**‘संस्कार परिष्कृति’ व ‘आचरणगत परंपरा’**”[1] को माना है। यह संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है लेकिन संस्कृति का अर्थ महज मनुष्य द्वारा निर्मित किया गया से लेना उसके संकुचित अर्थ को ही प्रकट करता है जबकि ऐसा नहीं है। संस्कृति किसी भी देश समाज की पहचान होती है। संस्कृति एक ऐसी सुचारू व्यवस्था है जिसमें मनुष्य जीवन के व्यवहार प्रयुक्त किए गए तरीकों अनेकानेक भौतिक एवं अभौतिक प्रतीकों, सामाजिक परम्पराओं, विचारों और भावनाओं, मूल्य और मानवीय क्रियाओं, साहित्य और कलाएँ आदि समाविष्ट रहता है।

संस्कृति में देश व समाज का वह सब कुछ समाहित रहता है जिसमें मनुष्य अपना जीवन निर्वाह करता है। संस्कृति के अंतर्गत समाज में रहने वाले मनुष्यों के रहन–सहन, भाषा, कला आदि प्रमुख रूप

1. बाहरी, हरदेव बाहरी. हिन्दी शब्दकोश. नई दिल्ली : राजपाल एण्ड संस, वर्ष 2016, पृष्ठ – 794 ।

से समाहित रहते हैं। संस्कृति में मनुष्य जीवन से संबंधित विचार, भावनाएँ, मूल्य, विश्वास, मान्यताएँ, धर्म आदि सम्मिलित रहते हैं। संस्कृति मूर्त और अमूर्त दोनों रूपों में विद्यमान रहती है। मूर्त रूप में देखा जाए तो संस्कृति भौतिक जगत में रहन-सहन और कलाओं में तथा अमूर्त रूप से हमारे आचा-विचारों, भावों एवं मूल्यों की द्योतक होती है। संस्कृति किसी भी देश या समाज की महत्वपूर्ण पहचान होती है क्योंकि इसके द्वारा ही हम उस देश के समाज और वहाँ की सभ्यता को समझ सकते हैं। संस्कृति एक सामाजिक विरासत के रूप में है। संस्कृति का सम्बन्ध मनुष्य के अन्तःकरण में विद्यमान मूल्यों से है। भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीनतम एवं समृद्धशाली संस्कृति रही है क्योंकि विभिन्न देशों की संस्कृतियाँ समय के साथ परिवर्तित और नष्ट होती रही हैं लेकिन भारतीय संस्कृति में हमेशा से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम' का विचार विद्यमान रहा है। इसलिए भारतीय संस्कृति निरंतर चलने वाली एक परम्परा का नाम है। भारतीय संस्कृति के मूल में मानवता की स्थापना का मुख्य ध्येय रहा है।

भारतीय संस्कृति में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे कि मानवता को किसी प्रकार का खतरा हो क्योंकि भारतीय संस्कृति हमेशा से ही उदार और समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाती आई है। संस्कृति हमारी सभ्यता का भी प्रमाण होती है। संस्कृति हमारे भावों और विचारों को संपोषित तो करती ही है साथ ही हमें मानवता का भी पाठ पढ़ाती है। समाज में व्यवस्थित रूप से रहने के लिए नवीन अवसर प्रदान करती है। संस्कृति समाज और मनुष्य के आंतरिक एवं बाह्य गुणों के विकास में प्रमुख और महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। वह हमारे मानवीय व्यवहार के विकास में सहायक है क्योंकि वह मनुष्य के सामाजिक व्यवहारों को सुनिश्चित करती है। मनुष्य को व्यवस्थित ढंग से चलने एवं आदर्शात्मक सिद्धांतों को एक मुकम्मल मार्ग प्रशस्त करती है। संस्कृति में कला का बहुत महत्व होता है क्योंकि कला द्वारा ही हम उस समाज की संस्कृति की सहज पहचान करते हैं।

संस्कृति को विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। जयशंकर प्रसाद संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "**संस्कृति सौंदर्यबोध के विकसित होने की मौलिक**

चेष्टा है ।"[1] वहीं रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति को जीवन जीने का तरीका मानते हुए लिखते हैं कि "**संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं। उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है ।"**[2] संस्कृति को समाज व राष्ट्र कि श्रेष्ठतम उपलब्धि मानते हुए मैथ्यू अर्नाल्ड लिखते हैं कि "**किसी भी समाज और राष्ट्र की श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ ही संस्कृति हैं जिनसे समाज राष्ट्र परिचित होता है ।"**[3] पृथ्वी कुमार अग्रवाल अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति की रूपरेखा' में स्पेंगलर द्वारा दी गई संस्कृति की परिभाषा को लिखते हैं कि प्रत्येक संस्कृति की अंतिम अवस्था सभ्यता है, सभ्यता प्रत्येक संस्कृति की नियति है। संस्कृति को समाज के सदस्यों कि जीवन शैली मानते हुए रैल्फ लिंटन लिखते हैं कि "**संस्कृति किसी समाज के सदस्यों की जीवन शैली है यह उन विचारों आदतों की समष्टि है, जिसे वे सीखते हैं जो साझा होती है, जो अर्थ के अंतर्गत विश्वास, मूल्य, प्रतिमान-प्रचलन, खान-पान, वेशभूषा, भाषा, साहित्य-कला और संगीत सभी शामिल हैं।"**[4]

संस्कृति और साहित्य का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है क्योंकि जो हमारे समय, समाज और संस्कृति में घटित होता है। उसका प्रभाव साहित्य में परिलक्षित होता है। संस्कृति और साहित्य दोनों एक दूसरे के संपूरक हैं क्योंकि संस्कृति में किसी भी समाज या देश के रीति-रिवाज, धार्मिक व सामाजिक मान्यताएँ, रहन-सहन, और कला हमारे भावों-विचारों की परिचायक होती है। संस्कृति से जुड़ी इन सभी धार्मिक व सामाजिक आदि तमाम मान्यताओं को, कलाओं को, रीति-रिवाजों को एक लिखित रूप

---

1. सिंह, नामवर. दूसरी परंपरा की खोज. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2003, पृष्ठ - 93 |
2. दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति भाषा और राष्ट्र. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2008, पृष्ठ - 13 |
3. कुमार, दीपक. भारतीय संस्कृति. वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2014, पृष्ठ - 01 |
4. रमेन्द्र, समाज और राजनीतिक दर्शन. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2005, पृष्ठ - 23 |

प्रदान करना साहित्य का काम है। चूँकि परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है इस सन्दर्भ में देखा जाये तो समय के परिवर्तन के साथ-साथ समाज और संस्कृति में भी निरंतर परिवर्तन होते रहते हैं और समाज, संस्कृति में परिवर्तन होने से यह स्वाभाविक ही है कि साहित्य में भी परिवर्तन आएगा। किसी समाज व देश की पहचान उसकी संस्कृति से होती है क्योंकि उसकी संस्कृति ही उसके समाज के व्यक्तित्व की संवाहक होती है। संस्कृति समाज की ऐसी पहचान है जिसमें तमाम गुण विद्यमान रहते हैं। संस्कृति समाज व व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक सिद्ध होती है।

संस्कृति एक परंपरा का नाम है जो निरंतर गतिमान है, पृथ्वी की तरह लगातार घूमती रहती है, चलती रहती है, संस्कृति में स्थायित्व का अभाव रहता है क्योंकि संस्कृति हमेशा प्रगतिशील स्थिति में ही विद्यमान रहती है। संस्कृति एक अविच्छिन धारा है जो एक नदी की तरह हमेशा बहती रहती है। संस्कृति में हमारी कलाओं के साथ-साथ व्यक्ति जीवन के मूलभूत तत्व भी शामिल होते हैं जिससे व्यक्ति के जीवन का निर्वाह होता है। संस्कृति में कला एवं मनोरंजन के साधनों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। साहित्य एक कला है जिसमें संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति, भूगोल आदि सब कुछ समाहित रहता है।

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में संस्कृति के चित्रण का विपुल भंडार है क्योंकि अशोक वाजपेयी मानव जीवन, समाज और संस्कृति की कविताएँ लिखते हैं। इन कविताओं में मनुष्य और संस्कृति के बढ़ते हुए अलगाव को पूरी शिद्दत के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इन कविताओं में हमारे समय और समाज से अलक्षित होती सांस्कृतिक विरासत के प्रति खेद प्रकट किया गया है। जिन चीजों को हम अपनी संस्कृति का परिचायक मानते आए हैं उन्हीं तमाम चीजों को आज हम आधुनिकता और वैश्वीकरण के चंगुल में फँसते हुए देख रहे हैं। वर्तमान समय में बढ़ता हुआ आधुनिकीकरण हमारी भारतीय संस्कृति पर लगातर प्रहार कर रहा है। जिससे शुद्ध भारतीय चीजों के कमतर होने की आशंका बनी हुई है। और कुछ तो नष्ट भी हो चुकी हैं। भारतीय संस्कृति से जुड़ी बाँस

की टोकनी, मिटटी के बर्तन, आदि इन तमाम चीजों को समय और समाज में बनाये रखने की पुरजोर कोशिश अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में करते हैं।

अशोक वाजपेयी अपने काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में नष्ट होती सांस्कृतिक पहचान पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं। 'चुपचाप कुछ भी नहीं था' कविता में संस्कृति को बचाए रखने की गहरी संवेदना अशोक वाजपेयी की कविता में दृष्टिगोचर हुई है जिसमें वह लिखते हैं कि-

"अब कहीं नहीं जा रही सीढियाँ

वहीं पर रखा

और भुला दिया गया

मिट्टी का बरतन

चुपचाप कुछ भी नहीं था।"[1]

अर्थात अब हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान नष्ट होने की कगार पर है। आज आधुनिकता की चपेट में शहर तो प्रभावित हुए ही हैं साथ में गाँव भी कम प्रभावित नहीं हुए हैं। आज हमारे समाज में कुम्हार का कोई महत्व नहीं रह गया है, और न उसके द्वारा बनाये गये मिट्टी के बर्तनों का। आज का मनुष्य अपने आपको सभ्य और मॉडर्न बनाने के लिए भारतीय संस्कृति की चीजों को दरकिनार करता जा रहा है। मिट्टी के बर्तन बनाना एक कला है। हम अपनी कला और संस्कृति से जुड़ी चीजों को भुलाते जा रहे हैं। यहाँ पर अशोक वाजपेयी अपनी कविता की मार्फ़त साहित्य और समाज में कला के प्रति लगाव और सांस्कृतिक अस्तित्व को बचाए रखने का आह्वान करते हैं।

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में लिखते हैं कि आज एक ऐसे प्रार्थनाहीन समय में जी रहे हैं जहाँ पर सब कुछ ठिठका हुआ सा चल रहा है। जिंदगी के सफ़र में संस्कृति एक ऐसा मार्ग है जो मंजिल तक पहुँचाने में कारगर सिद्ध होती है जिसमें कुछ भी बनावटी नहीं होता। भारतीय संस्कृति हमेशा

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 43।

पवित्रता और आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत रही है लेकिन आज हम उस अभय-अक्षय रहने वाली संस्कृति से दूर होते चले जा रहे हैं। जहाँ से लौट पाना बहुत ही मुश्किल है। वहाँ से लौट पाना मुश्किल है लेकिन असंभव नहीं है। हम अभी तक उन मार्गों पर लौटने के रास्तों का निर्माण नहीं कर पाए हैं तो लौटना कैसे मुनासिब होगा ? अशोक वाजपेयी उन लौट पाने के रास्तों की पड़ताल अपनी कविताओं में करते हैं तथा असंभव को संभव करने का प्रयास भी-

"इस प्रार्थनाहीन समय में
फिर भी सुनाई देती हैं
कुछ पवित्र पदचापें
कुछ अनुगूँजें,
हम कुछ अभय-अक्षय से
दूर जा रहे हैं।"[1]

'नदी-किनारे' कविता में अशोक वाजपेयी ने 'नदी' को एक प्रवाहमान संस्कृति का प्रतीक माना है। जो हमेशा प्रवाहमान रहती है, उसी तरह संस्कृति भी प्रवाहमान रहती है। जिस तरह नदी कभी भी नहीं थमती उसी तरह संस्कृति भी नहीं रूकती। इस 'नदी' रूपी संस्कृति में पलने वाली परम्पराएँ व रीति-रिवाज नदी किनारे खड़े हुए वृक्षों की झूमती हुई शाखाओं जैसी हैं। जो संस्कृति रूपी नदी के साथ बहने, आगे बढ़ने की इच्छा जाहिर करती हैं। उसी प्रकार समाज की मान्यताएँ संस्कृति के परिवर्तन के साथ बदलती रहती हैं। अविचल खड़े हुए वृक्ष हमारी आदर्शवादी संस्कृति के परिचायक हैं। आज हमारी संस्कृति में काफी कुछ बदलाव आए हैं मानाकि परिवर्तन संस्कृति का नियम है लेकिन जो हमारे आदर्शवादी मूल्य और परम्पराएँ हैं, वह भी आज नष्ट होती जा रहीं हैं। यहाँ पर अशोक वाजपेयी अपनी

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 26।

कविताओं में संस्कृति, आदर्श और भारतीय परम्पराओं को बचाए रखने की कोशिश करते हैं। वह कविता में लिखते हैं कि-

"उसके किनारे पर

हरी-भरी झूमती वृक्ष-शाखाएँ

नदी से कहती हैं :

हमें भी अपने साथ ले चलो,

अपने साथ बहा ले चलो !"[1]

अशोक वाजपेयी की ये कविताएँ भारतीय संस्कृति के लगातर ह्रासमान होने का संकेत, संस्कृति के प्रति बढ़ रहे अलगाव का प्रतिरोध और उसे बचाए रखने व संपोषित करने का भी कार्य करती हैं। चूँकि साहित्य और समाज में अशोक वाजपेयी की छवि एक संस्कृतिकर्मी एवं संस्कृति प्रिय कवि के रूप में विद्यमान रही है। अशोक वाजपेयी के सन्दर्भ में ध्रुव शुक्ल लिखते हैं कि **"वे अपने काम को काफी मानकर बैठ जाने वाले लोगों में से नहीं हैं। कुछ और कर सकना चाहिए का संकल्प उन पर छाया हुआ है। नशा है जो उतरता ही नहीं योजना बनाने और उनको सही नाम देकर अंतिम परिणति तक पहुँचाने में उनके जैसा संस्कृतिकर्मी भारत में कोई दूसरा नहीं है।"**[2]

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में, अपने शब्दों द्वारा रची गई भाषा में, संस्कृति को बचाने व सहेजने के जटिल कार्य को सुन्दर और सहजता के साथ कविताओं में करते हैं। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं के मार्फ़त हमारे समाज और संस्कृति से अलक्षित हो रहीं आदर्शवादी परम्पराओं, कलाओं, भाषाओं और जीवन मूल्यों की पड़ताल तथा उन्हें पुनः स्थापित करने का सफलतम प्रयास करती हैं।

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 70 |

2. सुमा, अबू. अशोक वाजपेयी की काव्य संवेदना. पीएचडी शोध प्रबंध. असम : असम विश्वविद्यालय, 2010, पृष्ठ – 23 |

2.1.3 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में 'दर्शन':

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में उनके विचार दर्शन की पड़ताल करने से पूर्व हमें यह अध्ययन करना आवश्यक होगा कि दर्शन क्या है ? दर्शन के सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों के मत क्या हैं ? दर्शन और साहित्य का संबंध क्या है ? और अशोक वाजपेयी की कविताओं में निहित दर्शन क्या है ?

'दर्शन' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'दृश' धातु से हुई है जिसका अर्थ 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम' अर्थात "'**जिसके द्वारा देखा जाए' वह दर्शन है ।**"[1] 'दर्शन' शब्द को अंग्रेजी में 'Philosophy' कहा जाता है जो ग्रीक भाषा के 'फिलॉस' एवं 'सोफिया' दो शब्दों से निर्मित हुआ है। 'फिलॉस' का अर्थ 'प्रेम या अनुराग' और 'सोफिया' का अर्थ प्रज्ञा, ज्ञान, विद्या है। अर्थात 'फिलॉसफी' का अर्थ 'ज्ञान के प्रति प्रेम या अनुराग' है। अब प्रश्न उठता है कि किसके द्वारा और किसे देखा जाये ? किसी भी चीज या विचार के वास्तविक ज्ञान या सत्य तक पहुँचने के लिए उसे बुद्धि और विभिन्न तर्कों की कसौटी पर खरा उतरना पड़ता है। तब जाकर वास्तविक सत्य की खोज संभव हो सकती है। फिर भी 'दर्शन' में ज्ञान के किसी एक निश्चित बिंदु पर ठहर जाना नहीं है क्योंकि ज्ञान की अनंत संभावनाएँ है जो निरंतर बनी रहती हैं। दर्शन एक दृष्टि, ज्ञान या समझ है जिसके मार्फ़त हम चीजों और विचारों को परख सकते हैं । उसके संभावित निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं । दर्शन एक विचार है जो बुद्धि और तर्कों के आधार पर सत्य ज्ञान की खोज कराता है।

मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है इसलिए किसी चीज या वस्तु के बारे में सोचना, विचार करना मनुष्य का विशिष्ट गुण है। इन्हीं गुणों के फलस्वरुप मनुष्य को पशुओं की श्रेणी से भिन्न समझा जाता है। इस भौतिक और आध्यात्मिक जगत के बारे में जानने के लिए मनुष्य के मस्तिष्क में तमाम तरह के प्रश्न

---

1. निगम, शोभना. भारतीय दर्शन. वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2008, पृष्ठ - 01।

उठते हैं। जैसे विश्व क्या है ? विश्व की उत्पत्ति कैसे हुई ? उत्पत्ति का कारण क्या है ? आत्मा क्या है ? जीव क्या है ? मनुष्य क्या है ? ज्ञान क्या है ? ईश्वर क्या है ? व्यक्ति और समाज में क्या संबंध है ? आदि इन तमाम तरह के प्रश्नों के जबावों को बुद्धि एवं तर्कों के साँचों में ढालकर देखना और जो उसका निचोड़ बचता है, वही ज्ञान है, वही हमारे देखने या दर्शन का नजरिया भी। मानव जीवन से सम्बंधित विभिन्न प्रश्नों का जबाव देना दर्शन का प्रमुख गुण है। दर्शन में अनुभव और भावनाओं पर अधिक बल नहीं दिया जाता बल्कि बुद्धि के आधार पर तर्कसंगत व्याख्या की जाती है।

मनुष्य जीवन में ज्ञान तत्त्व की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है ज्ञान या उसके विस्तृत स्वरूप प्रज्ञा के आभाव में मनुष्य, मनुष्य नहीं रह जाता बल्कि पशुवत हो जाता है। नीतिकार की उक्ति है '**ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः**'। चिंतन करना मनुष्य की मूल प्रवृति है। इस चराचर जगत के समस्त मनुष्यों के पास किसी चीज या तत्त्व के बारे में कोई न कोई जीवन दृष्टि, जीवन मूल्य या 'दर्शन' जरूर होता है। जिसके द्वारा मनुष्य चीजों और विचारों को जानने समझने का प्रयास करता है। पाश्चात्य दर्शन में प्रायः बौद्धिकता की प्रधानता रही है। यद्यपि कुछ पाश्चात्य दार्शनिकों ने अपरोक्ष ज्ञान के महत्व को भी स्वीकार किया है। दर्शन बुद्धि द्वारा सत्य ज्ञान की खोज करता है। दर्शन में व्यक्ति के विचारों और तथ्यों के आधार पर हम सत्य के निकट ही नहीं पहुँचते बल्कि उसकी वास्तविकता से भी परिचित होते हैं।

दर्शन में 'ज्ञान के प्रति प्रेम' से आशय यह नहीं कि, केवल सत्य की खोज करना है बल्कि जीवन और जगत के विभिन्न संवेदनात्मक संबंधों का भी ज्ञान प्राप्त करना है। भारतीय दर्शन को नौ संप्रदाय में विभाजित किया गया है जिनमें न्याय दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, मीमांसा दर्शन, वैशेषिक दर्शन, वेदांत दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन और चार्वाक दर्शन हैं। इन नौ सम्प्रदायों को भी दो भागों में विभक्त किया गया है। आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। आस्तिक दर्शन की श्रेणी में प्रथम छः दर्शन आते हैं

। जिनमें न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा, वैशेषिक, वेदांत हैं। इन्हें 'षड्दर्शन' की संज्ञा से अभिहीत किया गया है, तथा नास्तिक दर्शन की श्रेणी में अंतिम तीन दर्शन आते हैं। जिनमें जैन, बौद्ध और चार्वाक हैं।

'षड्दर्शन' को अध्यात्मवादी दर्शन भी कहा जाता है इन्हें मानने वाले संप्रदाय मुख्यतः वेदों में लिखित मान्यताओं को स्वीकार करते हैं। जो आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, जीव, ब्रह्म, कर्मकांड, मूर्ति पूजा आदि पर विश्वास करते हैं और ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करते हैं। वहीं दूसरी ओर जो वेदों की मान्यताओं का खण्डन करते हैं उन्हें 'अवैदिक दर्शन' की संज्ञा दी गई है। अवैदिक दर्शन को भौतिकवादी दर्शन भी कहा जाता है। नास्तिक दर्शन में परमात्मा या ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है भौतिक जगत के सत्य को ही माना है।

भारतीय दर्शन में वेद हमारे धर्म, संस्कृति और आध्यात्मिक जीवन के प्राणभूत आधार हैं। वेदों को मानने वालों के लिए वेद अपौरुषेय हैं, अलौकिक हैं। वेद अनंत ज्ञान के भंडार से भी परिपूर्ण हैं। हमारे समस्त ज्ञान के ये चैतन्य स्वरूप प्रमाणिक ग्रन्थ हैं। वेद हमारे जीवन का प्रमुख आधार हैं। जबकि वहीं चार्वाक दर्शन ने वेदों का खंडन किया है इसके सन्दर्भ में डॉ.जगदीश मिश्र अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन' में लिखते हैं कि 'भारतीय दर्शन में चार्वाक दर्शन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। सर्वप्रथम चार्वाक ने वैदिक धर्म सम्मत यज्ञ-याग, उपनिषदों के ब्रह्मवाद और पुनर्जन्म के सिद्धांतों का, पशुबलि की प्रथाओं का, जाति और वर्ण-व्यवस्थाओं का, ऊँच-नीच की भावनाओं का बड़ी निर्भीकता के साथ विरोध किया है। अर्थ और काम को ही इन्होनें पुरुषार्थ माना है।

भारतीय दर्शन के समस्त अधिकारी विद्वानों का परम लक्ष्य अध्यात्म के माध्यम से 'आत्मदर्शन' की प्राप्ति रहा है। अर्थात अपने आपको जान लेना कि हम क्या हैं ? हमारा अस्तित्व क्या है ? हमारी आत्मा क्या है ? हम क्या कर सकते हैं ? इन तमाम का बोध हो जाने पर मनुष्य के दुःख का

विसर्जन होने लगता है। भारतीय दर्शन में आत्मा को 'ब्रह्म स्वरूपा' स्वीकार किया गया है। 'आत्मा' को जान लेना ही 'ब्रह्म' से साक्षात् हो जाना है।

'सत्', 'चित्त', और 'आनन्द' के संयोग से 'सच्चिदानंद' के स्वरूप की कल्पना की गई है जिसमें 'सत्' अर्थात 'जो है', 'चित्त' अर्थात जिसमें 'चेतना है' और 'आनंद' का अर्थ जो 'आनंद प्रदान करने वाला' है, वही इस संसार का चालक है। भारतीय दर्शन की मूलतः यही अवधारणा रही है। भारतीय दर्शन को परिभाषित करते हुए डॉ. नरेन्द्र देव लिखते हैं कि **"भारतीय मनीषियों के उर्वर मष्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने दूर-दूर के मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें पवित्र, नित्य शुद्ध-बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धाराको लोग दर्शन के नाम से पुकारते हैं।"**[1] वहीं डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन' में 'दर्शन' को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि 'प्रत्येक जाति और समाज की आत्मा, परमात्मा, और विश्व को लेकर कुछ निश्चित विचार या धारणाएँ होती हैं, इन्हीं विचारों और धारणाओं को उस जाति या समाज का 'दर्शन' कहते हैं।' वहीं दर्शन को परिभाषित करते हुए श्री अरविन्द लिखते हैं कि **"दर्शन का कार्य ज्ञान के विभिन्न साधनों द्वारा उपलब्ध सामग्री को कुछ भी न छोड़ते हुए व्यवस्थित करने और उनको एक सत्य, एक सर्वोच्च सार्वभौम सदवस्तु से समुचित सम्बन्ध रखना है।"**[2] भारतीय दर्शन को यथार्थ का तार्किक ज्ञान मानते हुए डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन प्रतिपादित करते हैं कि **"दर्शनशास्त्र यथार्थता के स्वरूप का तार्किक**

1. पाण्डेय, श्रीकान्त. भारतीय दर्शन. मेरठ : साहित्य भण्डार, 2012, पृष्ठ – 01 |

2. शर्मा, रामनाथ. शिक्षा दर्शन. नई दिल्ली : अटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2006, पृष्ठ - 34 |

ज्ञान है ।"[1] हिन्दी विश्वकोश के अनुसार दर्शन का अर्थ "**जिसके द्वारा यथार्थ तत्व का ज्ञान होता है उसे दर्शन कहते हैं ।**"[2]

भारतीय दर्शन के साथ-साथ पाश्चात्य दार्शनिकों का भी अध्ययन हमें एक व्यापक दृष्टि को समझने का अवसर प्रदान करता है। पाश्चात्य दर्शन में भी दर्शन को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। 'दर्शन' के सन्दर्भ में प्लेटो का मत है कि "**दर्शनशास्त्र का उद्देश्य अनंत का तथा वस्तुओं के वास्तविक स्वररूप का ज्ञान प्राप्त करना है ।**"[3] वहीं अरस्तू दर्शन को वैज्ञानिक और परमतत्व की खोज बताते हुए अपना मत प्रतिपादित करते हैं कि 'दर्शन वह विज्ञान है जो परमतत्व के यथार्थ की खोज करता है।' **'**दर्शन' के सन्दर्भ में हीगेल का मानना है कि 'दर्शनशास्त्र उस तत्व के ज्ञान का नाम है जो नित्य है।'

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ भारतीय दर्शन, 'दर्शन' को आध्यात्मिक विषय के रूप में प्रतिपादित करता है, वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य दार्शन ने 'दर्शन' को वैज्ञानिक तर्कों के आधार पर सत्य ज्ञान को प्रतिपादित करने का प्रयास करता है। भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों दर्शनों का मूल है 'सत्य ज्ञान की खोज' । कुछ दार्शनिक अध्यात्म के द्वारा तो कुछ विज्ञान और तर्क के द्वारा सत्य तक पहुँचना चाहते हैं जबकि पहुँचना एक ही जगह है, और वह है 'ज्ञान' ।

---

1. बाबूराम, हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2002, पृष्ठ - 214 |
2. निगम, शोभना. पाश्चात्य दर्शन के सम्प्रदाय. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, 2013, पृष्ठ - 06 |
3. वही, पृष्ठ – 05 |

साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा कविता में दर्शन महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि दर्शन के आभाव में कविता, कविता नहीं रह जाती, बल्कि कोरे शब्द मात्र बचते हैं। कविता और दर्शन के सम्बन्ध में अरस्तू का मत हैं कि 'समस्त साहित्य में कविता सबसे अधिक दार्शनिक वस्तु होती है। यह बिलकुल सत्य है।' कविता स्वयं से ही उत्पन्न नहीं हो जाती, बल्कि उसमें एक विचार या दर्शन निहित होता है जो उसे सार्थकता प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय 'दर्शन और काव्य' के अंतर्गत लिखते हैं कि "**स्वयं काव्य भी दर्शन से प्रभावित हुआ है। यद्यपि इन दोनों के स्वरूप में पर्याप्त अंतर है क्योंकि दर्शन ज्ञान प्रधान है और काव्य भाव प्रधान। परन्तु काव्यगत विचारों में दार्शनिक प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इसके साथ ही विभिन्न उपादानों को ग्रहण करता है। इस प्रकार के काव्य के स्वरूप निर्माण से लेकर उसकी सौन्दर्य सम्पन्नता तक दर्शन ही, विभिन्न रूपों में, आधार प्रदान करता है।**"[1]

दर्शन मनुष्य के तथा सृष्टि के जीवन रहस्यों को जानने समझने का बौद्धिक एवं तर्कपूर्ण साधन है तो वहीं कविता मनुष्य के समग्र जीवन को भाषा में अभिव्यक्त करने का माध्यम है। कविता में निहित कोई सामान्य ज्ञान नहीं होता बल्कि किसी वस्तु या विचार के सन्दर्भ में समालोचनात्मक विश्लेष्ण किया जाता है। दर्शन मनुष्य जीवन के आन्तरिक एवं बाह्य रहस्यों को सत्यता के धरातल पर खड़ा करने के लिए बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कसता है, तो वहीं कविता में कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति भाषा के मार्फ़त करता है। तब वह कविता में न केवल अपने भावों को प्रकट करता है बल्कि वह अपने जीवन के गूढ़ रहस्यों को सत्यता के धरातल पर खड़ा करने का प्रयास करता है। कविता का यही दर्शन है।

कवि कविता में बाह्य जगत के साथ-साथ मनुष्य के अन्तः करण का भी चित्रण करता है। कविता हृदय में उद्भूत भावों को व्यक्त कर बुद्धि से अनुशासित करती है। लेकिन दर्शन में बुद्धि एक चिंतन

---

1. पाण्डेय, श्रीकान्त. भारतीय दर्शन. मेरठ : साहित्य भण्डार, 2012, पृष्ठ – 21।

प्रणाली का आधार है। कविता दर्शन की तरह नियम निर्धारण या आदेशात्मक कार्य नहीं करती बल्कि वह अपने समय और समाज में, अपनी भाषा में निवेदन करती है। साहित्य में विशेष तौर से कविता और दर्शन का विशिष्ट सम्बन्ध रहता है, जिसके माध्यम से समाज, संस्कृति, भाषा आदि को समझने के लिए एक दृष्टि प्रदान करता है। क्योंकि दर्शन और कविता में न केवल मनुष्य की समस्त अनुभूतियों की बौद्धिक व्याख्या की जाती है अपितु मनुष्य की अनुभूतियों का तार्किक मूल्यांकन भी किया जाता है। दर्शन का मूल उद्देश्य ज्ञान की खोज करना और मानव को उचित मार्ग की दृष्टि प्रदान करना है। वहीं कविता भावों और विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करने का माध्यम है। आधुनिक काल में भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन को लेकर प्राच्य व पाश्चात्य भाषा में विशाल साहित्य लिखा गया है। इस आधुनिक साहित्य में दर्शन की मौलिकता का अंश तो कम प्रतीत होता है अपितु दर्शन के ऐतिहासिक विकास के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन जरूर देखने को मिलता है। 'दर्शन सत्य की खोज करता है' यह कहने से सवाल यह उठता है कि दर्शन किस प्रकार के सत्य की खोज करता है ? दर्शन ज्ञान की सत्यता की खोज करता है तो कविता मनुष्य जीवन के यथार्थ सत्यों का अनुसन्धान करती है। दर्शन में बौद्धिकता पर बल दिया जाता है तो कविता में भावनाओं के द्वारा सामाजिक जीवन के यथार्थ का चित्रण होता है।

समकालीन हिन्दी कवि अशोक वाजपेयी की कविता में व्यक्ति के जीवन-दर्शन के विभिन्न गुण विद्यमान हैं। अशोक वाजपेयी की छोटी-छोटी कविताओं में भी जीवन का यथार्थ छिपा हुआ है, जो एक जीवन-दर्शन है। 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में मनुष्य जीवन की गहन आशक्ति दृष्टिगोचर हुई है जिस पर भारतीय दर्शन का गहन प्रभाव देखने को मिलता है। अशोक वाजपेयी ने अपनी कविताओं में छोटी-छोटी वस्तुओं के माध्यम से मनुष्य की आत्मा के बारे में बात की है कि पहले के मनुष्यों में दुःख को अपने हृदय में धैर्य के साथ धारण करने की क्षमता थी लेकिन आज के समकालीन

समय के मनुष्य में दुःख को अपने अन्तः करण में धारण करने की कोई जगह नहीं रह गई है। आज का मनुष्य दुःख से जल्दी ही पीछा छुड़ाना चाहता है क्योंकि अब मनुष्य दुःख भोगना नहीं चाहता -

"दुःख रखने की जगहें धीरे-धीरे कम हो रहीं हैं।"[1]

'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की 'फिर भी आवाज सुनाई देती है' शीर्षक कविता में भारतीय दर्शन के आस्तिक दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिसमें अदृश्य शक्ति ईश्वर की बात कही गई है। अशोक वाजपेयी कविता में किसी अदृश्य शक्ति को पुकारते हुए नजर आते हैं। वे किसी के न होने पर भी किसी अदृश्य शक्ति की दस्तक को महसूस करते हैं जो उनके अंतर्मन में सुनाई देती है। यह जो अंतर्मन में सुनाई देने वाली ईश्वर की आवाज है। वह आवाज भारतीय दर्शन में आस्तिक दर्शन की शाखा का प्रभाव है जिसमें ईश्वर को अदृश्य शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है –

"फिर भी आवाज सुनाई देती है

..

वह मुझे पुकारता

पर उसकी प्यास, उसकी दस्तक

आवाज में सुनाई देती है।"[2]

'अब सब कुछ को' कविता में भारतीय दर्शन के शंकर के अद्वैतवादी दर्शन की झलक दिखाई देती है। कविता में वे इस समस्त संसार को ब्रह्म का ही अंश स्वीकार करते हैं अर्थात् वह अब सब कुछ को एक साथ पुकारना चाहते हैं। जिसमें आकाश का मौन, ब्रम्हाण्ड का शून्य, पक्षियों की कलरव

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 11 |

2. वही, पृष्ठ – 17 |

ध्वनियाँ, वनस्पतियों की गंध, पृथ्वी का उत्साह, चन्द्रमा का तेजी से बढ़ना आदि जगत और जीवन की सच्चाई को व्यक्त करते हैं –

> **"मैं अब सब कुछ को एक साथ पुकारना चाहता हूँ**
>
> **ऐसी आवाज में**
>
> **जिसमें मटमैले शब्द,**
>
> **वनस्पतियों की गंध,**
>
> **पक्षियों की चहचहाहट,**
>
> **पृथ्वी का उत्साह,**
>
> **आकाश का मौन सब गुथें हों**
>
> **और जिसमें ब्रम्हांड का शून्य गूँजता हो।"**[1]

'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह में भौतिकवादी चार्वाक दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जिसमें अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं के माध्यम से आज के इस उपभोक्तावादी समाज में चीजों के प्रति बढ़ती हुई अनास्था और भागदौड़ भरी जिन्दगी में लोग लगे हुए हैं। अशोक वाजपेयी कहते हैं कि हम हमारे समय से या कहें कि बीते हुए कल से जल्दी ही मुँह मोड़ लेना चाहते हैं। छोटी-छोटी चीजों को बचाने-सहेजने की अब कोई इच्छा नहीं रह गई है। सिर्फ वर्तमान को ही सबकुछ मानते हैं। इस संसार को क्षणभंगुर मानना चार्वाक दर्शन का विचार रहा है जो संसार को भौतिक तत्वों से निर्मित मानता है और कहता है कि यह संसार नश्वर है। हम जैसे आए थे वैसे चले भी जायेंगे। वह आत्मा-परमात्मा आदि पर

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 20।

विश्वास नहीं करता और भौतिक जगत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु को ही सबकुछ मानता है। हमारा चीजों के प्रति बढ़ता हुआ अलगाव और उन्हें विस्मृत करते जाना आज के इस उपभोक्तावादी समाज की आदत बन गया है। जो भारतीय संस्कृति के लिए एक खतरा साबित होता है –

"हम उससे कुछ दूर तो आ ही गए हैं

और इस मुकाम पर

पिछली सदी के दु:ख को हम कुछ कात सकते हैं।"[1]

'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह में नास्तिक दर्शन का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिसमें आत्मा-परमात्मा और पुनर्जन्म का खंडन किया गया है। इस तरह की कविताओं में आस्तिकता का अभाव है। चंद्रमा को ईश्वर माना जाता है जिस पर गहरी आस्था और विश्वास किया जाता है लेकिन यहाँ उस पर विश्वास नहीं है। वे कहते हैं कि हम एक ऐसे प्रार्थनाहीन समय में हैं जहाँ पवित्र अनुगूंजें भी अब सुनाई नहीं देती। यह अनुगूँज ईश्वर के अस्तित्व की है जिसे स्वीकार नहीं किया जा रहा है। पुनर्जन्म का खंडन करते हुए वह कहते हैं कि –

"कोई नहीं लौटता

जो जाने के लिए बना है।"[2]

अशोक वाजपेयी ने यहाँ पर पुनर्जन्म का सीधा विरोध प्रकट किया है। जिसकी मृत्यु हो गई हो वह इस भौतिक संसार में पुनः जन्म नहीं ले सकता। नास्तिक दर्शन प्रायः भौतिकवादी दर्शन है और वह इस संसार को नश्वर मानता है। जिसका प्रभाव कविता में दृष्टिगोचर हुआ है।

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 24।

2. वही, पृष्ठ – 27।

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ की कविताएँ भारतीय दर्शन की विभिन्न धाराओं के विभिन्न विचारों से प्रभावित लगती हैं। इन कविताओं में शंकर के अद्वैतवादी दर्शन का प्रभाव लक्षित होता है जिसमें कवि कहते हैं कि मेरा नाम लिए बिना ही मुझे कोई पुकारता है, नीलिमा से, हरियाली से, शब्दों के बीच के मौन से आदि। ये नीलिमा का, हरियाली का, मौन में शब्दों की पुकार को सुनना ईश्वर की आवाज को सुनने का संकेत है। जिसे अंतर्मन की आँखों से ही परखा जा सकता है। वे कविता में लिखते हैं कि-

“मेरा नाम लिए बिना कोई मुझे पुकारता है :

...

कविता में अकस्मात् हो गए

शब्दों के बीचके मौन से-

कोई मुझे पुकारता है।”[1]

‘कहीं कोई दरवाजा’ काव्य-संग्रह की कविताओं में बौद्ध दर्शन का भी प्रभाव देखने को मिलता है जिसमें आज का मनुष्य अपने हृदय में संवेदनाओं को त्यागता जा रहा है। जिस हृदय में अनंत भावनाएँ समाहित रहती थीं। अब वही संवेदनाएँ और भावनाएँ धीरे-धीरे कम होती जा रही हैं। बौद्ध दर्शन आत्मा के अस्तित्व को मानते हुए भी नास्तिक है। इसमें हृदय या कहें कि आत्मा में रहने वाली मानवीय भावनाओं को महत्व दिया गया है, जो मनुष्यता के लिए बेहद जरूरी है। वे कविता में लिखते हैं कि-

“वह भरेपन का सपना कम देखती है,

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 49।

उसने अपने खालीपन के भूरे सच को

आत्मा की तरह जकड रखा है।"[1]

यहाँ पर भरेपन के सपने का निहितार्थ यह हो सकता है कि भावनाएँ कम हो गई हैं। और आत्मा की तरह जकड़ रखा है से मेरा आशय यह है कि इन भावनाओं ने हृदय से ऐसा त्याग ले लिया है जैसे कि कोई आत्मा शरीर को त्याग देती है। 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन का भी प्रभाव देखने को मिलता है। जहाँ वे अपनी कविताओं में अस्तित्व को तलाशते और स्थापित करते हुए नजर आते हैं। वे अपनी अधिकांश कविताओं 'मैं' या 'मैंने' जैसे अस्तिव के प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे अपनी कविता में लिखते है –

"मैं कैसे कहूँ

कि बस

इतना काफी है जितना मैंने देखा-सहा

और अब विदा ली जा सकती है ?"[2]

'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में निराशावादी दर्शन का भी प्रभाव दिखाई देता है। कवि कहता है कि निराशा में इस तरह जकड़े हुए हैं कि उम्मीद की कोई किरण नजर ही नहीं आ रही है। यह वर्तमान के मनुष्य जीवन का सच है। वह कहते हैं कि अब हमारी दुनिया में महज थोड़ी-सी रोशनी बची है और बहुत सारे अंधेरे हैं। यह अँधेरा अज्ञान और निराशा का है। निरंतर बढ़ रही हिंसा से चीख और विलाप की आवाजें सुनाई दे रही हैं। इनके अलावा अब हमारा जीवन बचा ही क्या है ? हम एक ऐसे

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 54 |
2. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 68 |

निराशावादी समय में जी रहे हैं जहाँ पर किसी से कोई उम्मीद नहीं कर सकते। वे कविता में लिखते हैं कि-

"अब थोड़ी-सी रोशनी, बहुत सारे अँधेरे
और थोड़े से विलाप के आलावा
अब बचा क्या है ?"[1]

अशोक वाजपेयी एक ओर जहाँ निराशावादी कविता लिखते हैं वहीं उसके बरक्स आशावाद की कविता भी लिखते हैं। 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की 'कैसे' और 'कहीं कोई दरवाजा खुलता है' कविताओं में गहन आशावाद की झलक दृष्टव्य होती है। जिसमें वह लिखते हैं कि अभी हमारा संसार बेहद सुन्दर है, जिसमें अभी बहुत सारी चूप्पियों को मुखरित होना है। ऐसा नहीं कि सभी स्वार्थी हो गए हैं अभी बहुत सारे लोग मददगार और भले हैं। हम जिस गहरे नाउम्मीद के समय में जी रहे हैं। इसमें अभी भी उम्मीद है क्योंकि अभी हमने अपना बचपन खेला ही कहाँ हैं। हमने चीखों, विलापों और पुकारों में अभी कोई प्रार्थना की ही कहाँ हैं। अभी बहुत कुछ अच्छा होना शेष है। अशोक वाजपेयी की ये कविताएँ नाउम्मीद के बरक्स उम्मीद की कविताएँ है। जिसमें कविता उन तमाम बंद हो गये दरवाजों पर उम्मीद की दी गई एक दस्तक साबित होती है। अर्थात् हम कह सकते हैं कि अशोक वाजपेयी निराशा के समय में भी आशा के कवि हैं, जो उनकी कविताओं में स्पष्टतः दृष्टिगोचर हुआ है।

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' की इन कविताओं में भारतीय दर्शन के प्रति गहन आस्था झलकती है। जिसमें आस्तिक और नास्तिक दोनों ही दर्शन का विराट समन्वय देखने

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 64 |

को मिलता है। जो भारतीय साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है। भारतीय दर्शन मानवीय कल्याण का दर्शन है जिसमें ज्ञान, अनुभव के साथ मनुष्य की भावनाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

2. 2 प्रकृति और प्रेम सौन्दर्य

'प्रकृति' शब्द अंग्रेजी के 'NATURE' शब्द का हिन्दी पर्याय है जिसका अर्थ प्राकृतिक वातावरण से लिया जाता है। डॉ. हरदेव बाहरी 'हिंदी शब्दकोश' में प्रकृति शब्द का अर्थ "**जो प्रकृति से उत्पन्न हुआ हो, प्राकृतिक**"[1] तथा दूसरे अर्थ में प्रकृति को 'स्वाभाव' माना है। लेकिन यहाँ हमें 'प्रकृति' शब्द को व्यापक अर्थ में देखना होगा। प्रकृति का एक अर्थ मानव स्वभाव से लिया जाता है तथा दूसरा अर्थ संसार की समस्त भौतिक वस्तुओं में पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, पहाड़, नदी-झरने आदि से लिया जाता है।

अशोक वाजपेयी की प्रकृति चित्रण की कविताओं में मात्र पेड़-पौधे या कि सुन्दर प्राकृतिक वातावरण ही नहीं है बल्कि प्राकृतिक सुन्दरता के साथ मनुष्य जीवन के सुख-दुःख भी समाहित हैं। क्योंकि प्रकृति की सौन्दर्यता मनुष्य के अभाव में कुछ भी नहीं रह जाती। प्रकृति की सौन्दर्यता का चित्रण करना भी मनुष्य के भावों से सम्बंधित है। कविता में मनुष्य अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को अभिव्यक्त करता है इसलिए कविता मनुष्य के अधिक निकट होती है। मनुष्य प्रकृति के सौंदर्य को साक्षात् करने वाला व उसकी सुन्दरता को भाषा के मार्फ़त कविता में रचता वाला है। प्रकृति और मनुष्य के बीच बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध में भगवतीचरण वर्मा अपने उपन्यास 'सामर्थ्य और सीमा' में लिखते हैं कि "**मनुष्य प्रकृति से अलग एक स्वतंत्र सत्ता है, केवल अर्ध-सत्य है। अन्य प्राणियों की भाँति मनुष्य भी प्रकृति से ही उभरा है, उसका समस्त अस्तित्व इस प्रकृति का ही एक भाग है। हाड़,**

1. बाहरी, हरदेव. हिन्दी शब्दकोश. नई दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, 2016, पृष्ठ - 526।

माँस, मज्जा ये सब प्रकृति से ही बने हैं। मनुष्य भौतिक प्राणी रहा है, मनुष्य भौतिक प्राणी रहेगा।"[1]

अशोक वाजपेयी महज अपने जीवन के अनुभवों एवं प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य की छवि का अंकन करने वाले कवि नहीं है, बल्कि प्रकृति के बिम्बों में मानवीय भावों की प्रति छवि अंकित करते हुए जीवन के अनुभवों को समग्रता में अखंडित रूप से चित्रित करने वाले कवि हैं। अशोक वाजपेयी की कविता की महत्वपूर्ण विशेषता प्रकृति के सौन्दर्य वर्णन में गहन अनुभूतियों की छवि तथा जीवन की शाश्वत सच्चाई को अपनी कविता में उकेरने की कला अशोक वाजपेयी में बखूबी देखने को मिलती है।

'प्रेम' शब्द को डॉ. हरदेव बाहरी 'हिन्दी शब्दकोश' में प्रेम का अर्थ 'प्रेम', 'प्रीति', और 'लगाव' मानते हैं। जो अंग्रेजी के **'LOVE'** शब्द का हिन्दी पर्याय है। 'प्रेम' शब्द अपने आपमें एक व्यापक अर्थ रखता हैं क्योंकि 'प्रेम' का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से जुड़ा हुआ है। प्रेम मनुष्य का जीवन है। मनुष्य का साहित्य, दर्शन, धर्म, समाज, संस्कृति आदि समस्त संसार प्रेम से ही अनुजीवित है। प्रेम के अभाव में मनुष्य, मनुष्य नहीं रहता बल्कि एक जानवर की भाँति व्यवहार करने लगता है। मानव जीवन में जो कुछ भी श्रेष्ठ और सुन्दर है वह प्रेम से ही अनुप्राणित है। मनुष्य इसी प्रेम के सहारे मानवीय कर्त्तव्यों को करने के लिए आबद्ध रहता है। यदि एक-दूसरे के प्रति प्रेम न हो तो मनुष्य, मनुष्य को ही नहीं पहचानेगा। जीवन में प्रेम जो आनंद की अनुभूति होती है वह अन्यत्र नहीं। जीवन में 'प्रेम' का अभाव बड़ा ही दुर्भाग्य का विषय है हालाँकि ऐसा नहीं होता है। इस संसार के प्रत्येक इंसान में प्रेम का भाव अनिवार्य रूप से होता है, चाहे वह जिस किसी भी रूप में हो। वास्तव में प्रेम को परिभाषित करना बहुत ही जटिल प्रक्रिया है।

---

1. वर्मा, भगवतीचरण. सामर्थ्य और सीमा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2015, पृष्ठ - 10।

'सौन्दर्य' शब्द के अर्थ को डॉ. हरदेव बाहरी 'सुन्दरता', 'खूबसूरती' और 'सौन्दर्य भावना' से मानते हैं। सुन्दरता को अंग्रेजी में '**BEAUTY**' कहते हैं। सौन्दर्य शब्द का प्रयोग जितना सामान्य लगता है, उसका अर्थ उतना ही रहस्यपूर्ण और विवादास्पद है क्योंकि सौन्दर्य को परिभाषित करना बहुत ही जटिल है। सौन्दर्य की कोई एक निश्चित परिभाषा अथवा उसके गुण को विश्लेषित नहीं किया जा सकता। सौन्दर्य ऐसा विषय है जिसे महसूस तो किया जा सकता हैं लेकिन उसे परिभाषित करना बहुत ही मुश्किल है। सौन्दर्य प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक वरदान है। वहीं पश्चिमी साहित्य में 'सौन्दर्य' को सिद्धांत के साथ जोड़ा गया है जिसे 'सौंदर्यशास्त्र' नाम से अभिहीत किया गया है। अंग्रेजी में इसे ऐस्थेटिक (**AESTHETIC**) कहते हैं।

'सौन्दर्य' को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। सौन्दर्य के सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने निबंध संग्रह 'चिंतामणि' में लिखा है कि "जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं।"[1] 'पाश्चात्य काव्य परंपरा' में सौन्दर्य को परिभाषित करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि 'सौन्दर्य वह आदिम विषय है, जो स्वयं कभी प्रकट नहीं होता वस्तु जिसका प्रतिबिम्ब सृजनशील मन की सहस्त्रों विविध उक्तियों से उद्भाषित होता रहता है और वह उतना ही वैविध्यपूर्ण है जितनी स्वयं प्रकृति।' हजारीप्रसाद द्विवेदी सौन्दर्य को अनुभूति का विषय मानते हुए कहते हैं कि 'प्रत्येक मनुष्य सौन्दर्य का अनुभव करता है परन्तु सौन्दर्य क्या वस्तु है ? इस विषय में बता सकना व्यक्ति के लिए कठिन है।' वहीं पाश्चात्य विद्वानों ने भी सौन्दर्य को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। 'सौंदर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा' नामक ग्रन्थ में राजेंद्र प्रताप प्लेटो की सौन्दर्य सम्बन्धी अवधारणा को लिखते हैं कि 'सुन्दर वस्तुएँ तो अनेक हो सकती हैं, किन्तु सौन्दर्य एक होता है। वह 'प्रत्यय' है यानि अनेकता में एकता।' वहीं कांट लिखते हैं कि 'निष्काम और निरपेक्ष आनंद देने

1. सिंह, संपा.- नामवर. चिंतामणि. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2003, पृष्ठ – 107 |

वाला पदार्थ सौन्दर्य है।' हम कह सकते हैं कि 'सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं, बल्कि किसी वस्तु में निहित एक ऐसा गुण है जो हमें आकर्षित करता है। सुन्दर वह होता है जो हमारे मन को अच्छा लगता है।' जैसे किसी खिले हुए फूल को देखकर हमारे अन्दर सुन्दरता का भाव आ जाता है जो उसकी तरफ आकर्षित करता है।

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में जीवन एवं प्रेम के सुखद अनुभव की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हुई है। अशोक वाजपेयी प्रेम को अपने आप में एक नैतिक कर्म मानते हैं। एक साक्षात्कार में परितोष कुमार मणि से बात करते हुए वह कहते हैं कि 'अव्वल तो प्रेम अपने आप में एक परम नैतिक कर्म है। मनुष्य प्रेम से बड़ा कोई नैतिक कर्म कर सकता है, ऐसा मैं नहीं सोचता।' अशोक वाजपेयी प्रकृति को एक पत्ती से उत्पन्न मानते है। एक हरी पत्ती से ही प्रकृति के अस्तित्व की रचना होती है। एक पत्ती का उगना प्रकृति को रचने की सुगबुगाहट है। एक हरी पत्ती प्रकृति की पहली दस्तक है। वह एक-एक पत्ती ही है जो समूचे जंगल और प्राकृतिक वातावरण को रचती है। जिसमें हिंसक, अहिंसक पशु और पक्षियों का बसेरा रहता है। वह एक पत्ती प्रकृति पर रची गई कविता का आदि शब्द है। वह एक ऐसी हरी शिखा है जिसमें प्रकृति से जुड़ी तमाम संभावनाएँ हैं। वह एक हरी पत्ती एक उजाला है जो प्रकृति का मार्ग खोलता है और उस प्रकृति में पले हुए पक्षियों की कलरव ध्वनि, प्रकृति का पहला विनय गीत है। अशोक वाजपेयी पूर्व निर्मित प्रकृति की सुन्दरता का चित्रण नहीं करते बल्कि वह अपनी प्रकृति स्वयं रचते हैं –

"एक पत्ती हरी दस्तक है...

वह सुगबुगाहट है,

वह कभी पूरी न हो सकने वाली

कविता का आदि शब्द है।"[1]

'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में अशोक वाजपेयी प्रकृति के लगातार ह्रासमान होने पर चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं कि अब कोई नहीं पुकारता मुझे, न भूरी चट्टानों से आच्छादित विशालकाय पर्वत, न सघन जंगल। इन जंगलों में एक-दूसरे से सटे हुए खड़े वृक्ष, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों में फैली हरीतिमा, पक्षियों की चहचहाहट और सूखी हुई पत्तियों का गिरना कुछ भी संबोधित नहीं है। कविता को दार्शनिकता से जोड़ते हुए प्रकृति की अदृश्य शक्ति की आवाज सुनते हैं। यहाँ पर कवि को प्रकृति के लगातार क्षरण होने की चिंता है। वर्तमान में बढ़ रहे औद्योगिकीकरण के चलते विभिन्न कल-कारखानों से निकला हुआ जहरीला धुँआ, ग्रीन हाउस का बढ़ता हुआ प्रभाव प्रकृति के लिए बहुत ही खतरनाक साबित हो रहा है, जिससे प्रकृति को काफी नुकसान हो रहा है। अशोक वाजपेयी एक कवि होने के नाते प्रकृति को बचाए रखने का आह्वान अपनी कविताओं के मार्फ़त करते हैं। इस सन्दर्भ एक कवितांश दृष्टव्य है –

"कोई मुझे नहीं पुकारता

न भूरी चट्टानों से लदे-फँदे पर्वत,

न उपत्यका में

एक दूसरे के बहुत नजदीक खड़े वृक्ष,

न वनस्पतियों में फैले

हरीतिमा के अनगिनत संस्करण

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 14 |

कोई भी मुझे नहीं पुकारता ।"[1]

'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की प्रकृति सौन्दर्य से जुडी हुई कविताओं में अशोक वाजपेयी ने प्रकृति का मानवीकरण किया है जिसमें वह प्रकृति से सम्बंधित केवल पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, पर्वत, झरना आदि का ही सुन्दर चित्रण नहीं करते बल्कि उनकी गहनतम पीड़ाओं को भी सुनते हैं। वे अपनी कविताओं में महज प्रकृति के सुन्दर रूपों को ही नहीं रचते बल्कि प्रकृति से सीधा संवाद स्थापित करते हैं। वह कहते हैं कि भले वृक्ष मुझसे कुछ भी न कहे लेकिन उसकी हरी छाँव में नीचे बैठकर उससे बात कर सकता हूँ। वे पर्वतों के लगातार नीरव उदासीन होते जाने पर उनसे शिकायत करते हैं। वह सुनें अथवा न सुने लेकिन उनसे उनकी उदासीनता के कारण को जानना चाहते हैं। वह झरने के बहते हुए निर्मल जल की छलछल से तान मिलाकर शोक गीत गाते हैं। वह पक्षियों को अपने मौन में अर्थात् अपनी कविता में शब्दों के माध्यम से आमंत्रित करते हैं। अशोक वाजपेयी कविता लिखना शब्दों से क्रीड़ा करना मानते हैं –

"भले वृक्ष मुझसे कुछ न कहे

उसके नीचे बैठकर

उससे बतिया सकता हूँ।

भले अनसुनी कर दे मेरी पुकार

उसकी नीरव उदासीनता के बारे में ।"[2]

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 16।
2. वही, पृष्ठ - 18 ।

'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में अशोक वाजपेयी वर्तमान में लगातार बढ़ते हुए प्रकृति के दोहन और पर्यावरण के ह्रास होने पर उसे बचाने और सहेजने का प्रयास करते हैं। वे प्रकृति के साथ घटित अमानवीयताओं को कविताओं में रेखांकित करते हैं। कविताओं के माध्यम से अशोक वाजपेयी ने प्रकृति की उदारता का वर्णन किया है। साथ ही चिंता जाहिर करते हैं कि प्रकृति का लगातार दोहन करने से नदियाँ असमय ही सूखती जा रही हैं। विकास के नाम पर जंगलों को साफ कर दिया जा रहा है जिससे विशालकाय पर्वत भी नग्न होते जा रहे हैं। इसके बावजूद प्रकृति अभी भी बेहद सुन्दर है। अभी भी हम उसे बचा सकते हैं, सहेज सकते हैं। वे कहते हैं कि प्रकृति को हम अभी भी बचा सकते हैं क्योंकि हमारे पास अपने पूर्वजों के बहुत सारे अनुभव हैं। यह पृथ्वी अब भी एक गिले मिट्टी के लौंदे के समान है जिसे हम अपने अनुसार आकार दे सकते हैं। हम उसे अभी भी सूर्य की मानिंद उज्जवल और उत्तप्त बना सकते हैं। आकाश की मानिंद असीम आकार में गढ़ सकते हैं-

"अपने हाथों से उठाओ पृथ्वी

और महसूस करो कि

कभी हरी-भरी, कभी भूरी-सूखी

उसकी वत्सलता कभी चुकती नहीं है

कि वह तुम्हारे गुनाहों को

फेंकती जाती है विस्मृति के क्षमादानों में।"[1]

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 22।

'कौन जानता है?' कविता के माध्यम से अशोक वाजपेयी कहना चाहते हैं कि हमारी प्रकृति में निहित हरेक चीजों को हम चिन्हित नहीं कर पाते हैं। प्रकृति की ऐसी बहुत सारी चीजें हैं जो हमारी नजर में ही नहीं आती हैं। जब हम पेड़ की सुन्दरता को निहारते हैं तो उससे झड़ चुकी सूखी पीली पत्तियों के बारे में नहीं सोचते हैं। नदी किनारे खड़े होकर उसके शीतल प्रवाह को देखने में इतने तल्लीन रहते हैं कि उसके किनारे लगे सुंदर फूलों पर हमारी नज़र नहीं जाती है। नदी की सौन्दर्यता में हम फूल की सुन्दरता को देखना मुनासिब नहीं समझते हैं। आकाश की नीलिमा को निहारते हुए हम टूटकर गिरे हुए अनाम नक्षत्र पर कभी ध्यान नहीं देते। लेकिन अशोक वाजपेयी वृक्ष की हरीतिमा के साथ सूखी हुई पीली पत्ती को, नदी की सुन्दरता के साथ किनारे लगे हुए अचकचाए फूलों को, आकाश के अतल में टूटकर गिरे अनाम नक्षत्रों को, अपनी कविता में रचते हैं। जिसे हम नज़रअंदाज कर जाते हैं उन्हें कविता में अशोक वाजपेयी महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। यह एक कवि की विशिष्टता है कि वह उन चीजों को लक्षित करता है जिस पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता है। शायद यह उक्ति सही ही है कि 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि।' कविता का अंश इस प्रकार है –

"नदी के किनारे

हरियाती घास में खिला

अचकचाया फूल –

आकाश के अतल में

टूटकर गिरा

एक अनाम नक्षत्र –

कौन जानता है ?"[1]

'तीन कविताएँ' शीर्षक के अंतर्गत छोटी-छोटी तीन कविताएँ हैं। कविताएँ छोटी भले ही हैं लेकिन उनकी अर्थवत्ता बहुत ही व्यापक है। दूसरी कविता में प्रकृति और प्रेम सौन्दर्य की अद्भुत अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हुई है। वे कहते हैं कि उसे प्रेम करना असीम आकाश की नीलिमा हो जाना है। उसे प्रेम करना नदी में मिलने वाले पनियों की गहराई हो जाना है। उसे प्रेम करना असफलता में ही लिखी गई असंभव कविता हो जाना है। वह प्रेम को असीम आकाश की नीलिमा, प्रवाहमान नदी की अतल गहराई और विफलता में ही कविता में आजमाए गए शब्द मानते हैं। अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं में ऐन्द्रिकता के जरिये बुनियादी संवेदनाओं और संसार को छूने का प्रयास हमेशा रहा है और इन कविताओं में भी लक्षित हुआ है-

"उसे प्यार करना

असीम आकाश की नीलिमा हो जाना है,

नदी में मिलने वाले पानियों की गहराई हो जाना है।"[2]

'विनय गीत' कविता में अशोक वाजपेयी प्रेम के लिए प्रकृति से निवेदन करते हुए नज़र आते हैं। वे प्रेम के लिए प्रकृति से कोई होड़ नहीं बांधते, या कि सूर्य, चंद्रमा, आकाश, हवा आदि के जैसा हो जाना मुनासिब नहीं समझते हैं बल्कि प्रेम के लिए प्रकृति से अनुनय विनय करते हैं। वे सूर्य से अनुग्रह करते हैं कि अपना थोड़ा-सा उदय और अस्त दो, थोड़ी सी लालिमा और कुछ ताप दो जिसकी मार्फ़त मैं प्रेम कर सकूँ। वे आकाश से प्रार्थना करते हैं कि थोड़ी-सी नीलिमा और असीमता दो जिससे की मैं प्रेम कर सकूँ। वे हवा से कहते हैं कि तुम वहाँ तक प्रवाहित होकर जाओ जहाँ मेरा प्रेम रहता है और उसके

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 41।
2. वही, पृष्ठ - 49 ।

दरवाजे पर एक हल्की सी दस्तक देकर कहना कि कोई तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। इस कविता में अशोक वाजपेयी प्रकृति के सहारे प्रेम की अद्भुत अभिव्यंजना करते हैं-

"सूर्य से मैंने कहा

थोड़ा-सा अपना उदय और अस्त दो,

थोड़ी-सी लालिमा और कुछ ताप

ताकि मैं प्यार सकूँ।"[1]

'यह जो' कविता में अशोक वाजपेयी ने प्रकृति का कविता से सम्बन्ध को स्थापित किया है। वे कहते हैं कि नदी के सागर में मिलने से पूर्व जो आह्लादित गान उठता है। पवित्र अँधेरी खोहों में जो धीरे-धीरे से उठती है एक प्रार्थना और अनंत इच्छाओं के तलघर में से जो प्रस्फुटित होती है कोई अनाम कविता। यह सब प्रकृति ही है जिसकी सुन्दरता को वह अपने शब्दों के माध्यम से कविता में व्यक्त करते हैं।

'हवा में' कविता 'कहीं कोई दरवाजा' कविता संग्रह की सबसे छोटी एवं व्यापक अर्थ प्रकट करने वाली कविता है। इस कविता में रघुवीर सहाय की 'रचता वृक्ष' कविता का प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसमें पत्तों का झरना नहीं है बल्कि वृक्ष कुछ रचता है। उसी की मानिंद अशोक वाजपेयी इस कविता में लिखते हैं कि पक्षी चलते हैं हवा में हम उसे उड़ना कहते हैं। अर्थात् प्रकृति के सम्बन्ध में हम जैसा सोचते हैं वैसा नहीं होता। प्रकृति हमेशा कुछ न कुछ रचती रहती है। प्रकृति जो रचती है वह उसका बुनियादी सरोकार है लेकिन उसे हम समझ नहीं पाते। कविता दृष्टव्य है –

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 51 |

“पक्षी

चलते हैं हवा में

हम उसे उड़ना कहते हैं।”[1]

‘वही पृथ्वी है’ यह कविता प्रकृति से सम्बन्धित ‘मृत्युबोध’ की भी कविता है जिसमें अशोक वाजपेयी कहते हैं कि यह वही पृथ्वी है जो हमें उत्तराधिकार में मिली थी जिसे हम यहीं छोड़कर चले जायेंगें। यह जो हमारे चारों ओर जीवन पर्यंत तक छाया हुआ असीम आकाश है। यह वही हवा है जो इस संसार में हमारे आने से पूर्व चलती थी, आज भी प्रवाहमान है और हमारे जाने के बाद भी प्रवाहित होती रहेगी। यहाँ इस कविता में कवि प्रकृति के शाश्वत बने रहने की बात करते हैं कि प्रकृति कभी नष्ट नहीं होती। वह हमारे जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात् भी बनी रहती है। हम इसी प्रकृति के एक अंश हैं जो एक निश्चित समय के लिए मनुष्य का रूप आकार ग्रहण करते हैं और उसी में समाहित हो जाते हैं–

“वही पृथ्वी है जो हमें उत्तराधिकार में मिली थी

और जिसे हम छोड़ जाएँगे,

वह आकाश है जो हम पर जन्म से ही छाया है

और हमारे बाद भी छाया रहेगा।”[2]

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ - 56 |
2. वही, पृष्ठ – 85 |

'नदी कुछ कहती रहती है' 'कहीं कोई दरवाजा' की इस कविता में प्रकृति और प्रेम सौन्दर्य की अद्भुत अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हुई है जिसमें अशोक वाजपेयी कहते हैं कि प्रकृति हमसे कुछ कहती रहती है। कवितांश है –

"हो सकता है कि उसका कहना हो

कि तुम मेरे संसार हो,

नदी कुछ कहती रहती है

और हम समझ नहीं पाते। "[1]

'नदी' जब बहती है तो उसकी कलकल की सुन्दर ध्वनि हमसे कुछ कहती है जिसे हम समझ नहीं पाते क्योंकि हमें उसकी भाषा नहीं आती है। हो सकता है वह कहती हो कि मुझे इतना बाँध क्यों रहे हो ? मुझे अबाधित बहने क्यों नहीं देते ? नदी अपने आपमें विलाप करती है कि मेरा इतना सारा पानी व्यर्थ ही बहता रहता है। वह अपने बहते हुए जल में प्रतिबिंबित पहाड़ों, पर्वतों और कछारों से कहती है कि तुम मेरे संसार हो। वह कहती है तुम मुझमे समाई हुई मछलियों, वनस्पतियों एवं अन्य जीवों के सुन्दर संगीत को नज़रन्दाज क्यों करते रहते हो ? वह कहती है कि मैं महज एक बहती हुई जलधारा नहीं हूँ बल्कि अनवरत लिखा जा रहा एक ऐसा प्रेम पत्र हूँ जो सागर में जाकर मिलने वाला है। वह नदी एक ऐसी निर्बाध प्रार्थना है जो किसी अदृश्य ईश्वरीय शक्ति को संबोधित है। नदी कहती है कि मैं एक ऐसी अनवरत यात्रा हूँ जो जल में ही करती हूँ समुद्र की ओर, जिसे हम समझ ही नहीं पाते हैं। दार्शनिक रूप में इसके अर्थ को समझने की कोशिश करें तो हम कह सकते हैं कि यह जो नदी है, वह मनुष्य जीवन की निरंतर

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ - 97।

चलने वाली यात्रा है जो अंत में जिस भौतिक तत्वों से निर्मित हुई है उन्हीं भौतिक तत्वों में मिलने के लिए लगातार अग्रसर रहती है-

"मैं एक प्रार्थना हूँ सजल

जो किसी अदृश्य ईश्वर को सम्बोधित है-

मैं एक यात्रा हूँ जो जल करता है जल की ओर !

नदी कुछ कहती रहती है

और हम समझ नहीं पाते।"[1]

अशोक वाजपेयी की ये कविताएँ अनुभूति के स्तर पर प्रेम और जीवन की गहरी छवि अंकित करती हैं तथा उनकी अभिव्यक्ति में दैहिक प्रेम के साथ प्रकृति के प्रति भी अनुराग है। प्रेम और प्रकृति से जुड़ी कविताओं के बारे में परितोष कुमार मणि से साक्षात्कार में अशोक वाजपेयी कहते हैं कि 'अगर यह कहें कि मैं प्रेम का ही कवि हूँ तो यह सही नहीं है, क्योंकि मैं प्रेम के अलावा भी बहुत-सी चीजों का कवि हूँ। अगर ये कहें कि मैं प्रेम और मृत्यु का कवि हूँ, तो मैं प्रकृति का भी कवि हूँ।' अशोक वाजपेयी न केवल माँसल प्रेम की कविताएँ लिखते हैं बल्कि मनुष्य-मनुष्य से प्रेम की भी कविताएँ लिखते हैं। वे प्रकृति की कविताएँ लिखते हैं जिसमें सबकुछ समाहित रहता है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, सूर्य-चंद्रमा, आसमान, पर्वत, नदी-झरने, अनंत आदि। अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं के सन्दर्भ में अजित चौधरी लिखते है कि 'प्रेम कविता के लिए लगातार कोसे जानेवाले अशोक वाजपेयी ने एक जिद के तहत पूरी जिजीविषा और रसिकता से प्रेम के तत्त्व को बरक़रार रखते हुए धुआँधार प्रेम कविताएँ लिखी हैं।'

---

1. . वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ - 96 |

अशोक वाजपेयी की कविता का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है जिसमें प्रकृति के जड़ एवं चेतन दोनों का विस्तीर्ण समाहार है। इन कविताओं में प्रकृति के अनछुए एहसास और प्रेम सौन्दर्य की गहन अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं। अदम्य जिजीविषा, अपार उत्साह और असीम साहस अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं की महत्वपूर्ण विशेषता है। वे प्रेम के विपरीत समय में भी प्रेम के लिए रास्ता खोजने वाले कवि हैं। अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रेम प्रारंभ से ही सर्वोपरि रहा है। आज भी कविता में प्रेम के प्रति आसक्ति कुछ कम प्रतीत नहीं होती है। वे अपनी प्रेम और प्रकृति से जुड़ी कविताओं के सन्दर्भ में कन्हैयालाल नंदन से साक्षात्कार में कहते हैं कि कुछ चीजें जो छूट गईं, मैं एक तरह से उन छूटी हुई चीजों का कवि हूँ। प्रेम छूट गया, कोमलता छूट गई, प्रकृति छूट गई इनसे जो हमारा गहरा सम्बन्ध था, वो छूट गया। अशोक वाजपेयी उन छूटी हुई चीजों को अपनी कविता का विषय बनाते हैं।

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में प्रेम की अतिसूक्ष्म संवेदनाओं को बड़े ही सहज ढंग से, सुन्दर भाषा में व्यक्त करते हैं। आज के उपभोक्तावादी समाज में जब प्रेम के लिए कोई जगह नहीं रह गई हो तब इस विपरीत समय में भी अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में प्रेम का इसरार करते हैं। इस सन्दर्भ में समकालीन कवि-आलोचक अरूण होता लिखते हैं कि "**अशोक वाजपेयी की कविता में प्रेम और सौन्दर्य की गहन अनुभूति व्यक्त हुई है आज के उपभोक्तावादी समाज में इस प्रेमाभिव्यक्ति का विशेष महत्व है।**"[1] अशोक वाजपेयी महज दैहिक प्रेम के कवि नहीं हैं बल्कि मनुष्य के समग्र जीवन के प्रति अनुराग के कवि हैं। अशोक वाजपेयी की प्रेमपरक कविताओं में सौन्दर्यबोध शुरुआत से लेकर अब तक की कविताओं में विद्यमान रहा है। अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं की तुलना शमशेर बहादुर की प्रेम कविताओं से करते हुए कहते हैं अरविन्द त्रिपाठी लिखते हैं कि "**वे पारंपरिक श्रृंगार के बजाय विशुद्ध सौन्दर्य बोध और प्रेम के अनन्य कवि शमशेर जैसे ही हैं। नई**

1. होता, अरूण. समीक्षा पत्रिका. वर्ष-49. अंक-02. जुलाई- सितम्बर. इंदिरापुरम उत्तरप्रदेश, 2016, पृष्ठ – 26।

कविता के इतिहास में शमशेर यदि विशुद्ध सौन्दर्य और प्रेम के एक अद्वितीय कवि हैं, तो आज इस परंपरा के दूसरे समर्थ कवि अशोक वाजपेयी ही हैं। अगर शमशेर और अशोक की कविता पर एक साथ दृष्टिपात किया जाए तो कई समानताएँ काव्यानुभूति के स्तर पर दिखायी पड़ेंगी।"[1]

अशोक वाजपेयी की इन प्रेम कविताओं में प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड के विविध रूप देखने को मिलते हैं। प्रेम के लिए लगातर जगह तलाश करती ये कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य में एक जरुरी हस्तक्षेप साबित होती हैं। अशोक वाजपेयी अपनी इन प्रेम कविताओं में अधिकांशतः गहन अनुभव के स्तर से गुजरते हुए प्रतीत होते हैं।

2. 3 मानवीय मूल्य और संवेदना ;

'मूल्य' शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु से निर्मित हुआ है। डॉ. हरदेव बाहरी 'हिंदी शब्दकोश' में 'मूल्य' का एक अर्थ कीमत या भाव को मानते हैं और दूसरे अर्थ में गुण या तत्त्व को मानते हैं जिसका अर्थ 'चरित्र का मूल्य, मानवता का मूल्य' से है। 'मूल्य' को अंग्रेजी में 'VALUE' कहते हैं जिसका अर्थ वस्तु की कीमत से लिया जाता है। लेकिन भारतीय विद्वानों ने 'मूल्य' को मनुष्य के जीवन चरित्र से जोड़कर एक व्यापक अर्थ प्रदान किया है। 'मूल्य' शब्द की व्याख्या महज वैल्यू, कीमत या मनुष्य का स्वभाव कहने से नहीं हो जाती बल्कि मूल्य को व्यापक दृष्टि में समझने के लिए अन्य 'मूल्य' विषयक धारणाओं को समझना समीचीन होगा।

मनुष्य जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में 'मूल्य' शब्द का प्रयोग किसी न किसी अर्थ में होता रहा है। वास्तव में मूल्य किसी वस्तु की गुणवत्ता का सूचक है। मूल्य किसी भी व्यक्ति समाज व देश के आदर्श

1. त्रिपाठी, अरविन्द. प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ - 06।

होते हैं। डॉ.रामस्वरूप अरोड़ा 'प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि 'मूल्य का अर्थ केवल अर्थशास्त्रीय मूल्य ही नहीं है बल्कि उसका वास्तविक अर्थ तो सामाजिक, साहित्यिक एवं मानसिक आदि दृष्टि से एक आदर्शात्मक अर्थवत्ता को अभिव्यक्त करना होता है।'

विश्व की विभिन्न भाषाओं में विभिन्न विद्वानों ने 'मूल्य' शब्द के अर्थ को अलग-अलग ढंग से प्रतिपादित किया है। इटालियन भाषा में मूल्य को 'वैलोर' (velore) कहा जाता है जिसे 'सम्मान' का प्रतीक माना गया है। जो श्रेष्ठता को व्यक्त करता है। फ्रांसीसी भाषा में 'मूल्य' शब्द का अर्थ 'सममूल्य' से लिया जाता है। ग्रीक भाषा में मूल्य को 'किसी महान पुरुष' या 'विशेष शक्ति' के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अंग्रेजी के 'value' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'valere' शब्द से मानी गई है। जिसका अर्थ किसी वस्तु की कीमत के लिए प्रयोग किया जाता है। पाश्चात्य मूल्य-मीमांसा की तुलना में भारतीय मूल्य मीमांसा अपना अलग एवं व्यापक अर्थ प्रकट करती है क्योंकि भारतीय मूल्य मीमांसा या दर्शन का प्रमुख आधार वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, जैन, बौद्ध आदि ग्रन्थ हैं। वेदों में ऋत, सत्य, अमृतत्व और आनन्द इन चारों को व्यक्ति के जीवन मूल्य के सन्दर्भ में प्रयोग मिलता है। उपनिषदों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को जीवन मूल्यों की संज्ञा दी गई है।

'मूल्य' की उत्पत्ति समाज निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही प्रारंभ हो जाती है। 'मूल्य' को जीवन की अनुभूति मानते हुए डॉ.नगेन्द्र लिखते हैं कि "**जीवन की अनुभूति का फलितार्थ ही मूल्य है जो अपनी सामान्यता में अमूर्त बन जाता है।**"[1] डॉ. राधाकमल मुखर्जी मूल्य को समाजीकरण की प्रक्रिया मानते हुए लिखते हैं कि "**मूल्य समाज स्वीकृत इच्छाएँ तथा लक्ष्य हैं जिनका अंगीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो कि प्रतितिक अधिमान्यतायें**

1. नगेन्द्र, नयी समीक्षा : नए सन्दर्भ. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1970, पृष्ठ-83।

मान तथा अभिलाषाएँ बन जाती हैं ।"[1] डॉ. शशि सहगल मूल्य को जीवन की वैचारिक इकाई मानती हुई लिखती हैं कि "**मूल्य एक वैचारिक इकाई है, जिसे आधार बनाकर व्यक्ति अपना जीवन जीता है और उसे आत्मोपलब्धि होती है ।"**[2] रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका में पंडित जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं कि '**संस्कृति** का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी नैतिक उन्नति है, एक दूसरे के साथ सदव्यवहार है और दूसरे को समझने की शक्ति है ।' वुड्स '**मूल्य**' को जीवन का आदर्श मानते हुए लिखते हैं कि "**मूल्य दैनिक जीवन में व्यवहार को नियंत्रित करने के सामान्य सिद्धांत हैं । मूल्य न केवल मानव-व्यवहार को दिशा प्रदान करते हैं बल्कि वे अपने आप में आदर्श और उद्देश्य भी हैं।"**[3]

मूल्यों के प्रकार-

- वैयक्तिक या मानवीय मूल्य
- सामाजिक मूल्य
- सांस्कृतिक मूल्य
- दार्शनिक मूल्य
- आध्यात्मिक मूल्य
- साहित्यिक मूल्य
- पारिवारिक मूल्य

---

1. पानेरी, हेमेन्द्र कुमार. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण. उदयपुर : संधि प्रकाशन, 1974, पृष्ठ - 09 |

2. सहगल, शशि. नयी कविता में मूल्यबोध, नई दिल्ली : अभिनव प्रकाशन, 1976, पृष्ठ - 16 |

3. शर्मा, जी.एल.. समाजशात्र. आगरा : उपकार प्रकाशन, 2010, पृष्ठ – 37 |

- आर्थिक मूल्य
- ऐतिहासिक मूल्य
- पौराणिक मूल्य
- वैज्ञानिक मूल्य

'समकालीन हिन्दी कविता' वर्तमान मनुष्य के जीवन का यथार्थवादी दृष्टिकोण है, जिसमें आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ भावनाओं का भी आत्मविस्तार है। वैयक्तिक मूल्यों के महत्व बढ़ने से ही समकालीन कविता में अनुभूति की प्रमाणिकताओं पर विशेष रूप से बल दिया जाने लगा है। समकालीन पूर्ववर्ती या यों कहें की छायावादी कविताओं में वैयक्तिक अनुभूतियों को विशेष महत्व नहीं दिया गया जिससे स्वतंत्र अभिव्यक्ति हो सके। प्रगतिवादी कविताओं में सामाजिक, आर्थिक संबंधों पर अधिक बल दिया गया है, जिसमें समाजीकरण की अवधारणा मुख्य रूप से रही है। अतः व्यक्ति उपेक्षित ही रह गया है, लेकिन समकालीन हिन्दी कविता में जो व्यक्तिवादी धारणा का जन्म हुआ है तब से व्यक्ति को सर्वोपरि माना गया। वैयक्तिक या मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में धर्मवीर भारती का मत है कि "**मानवीय मूल्य अन्तोगत्वा मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में ही पनपते हैं और उनका विकास व्यक्ति से समूह या समाज की ओर होता है।**"[1] भारती जी का मानना है कि मानवीय मूल्यों का जन्म मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में ही होता है परन्तु उनका विकास समाज में ही संभव होता है। जब व्यक्ति अपने जीवन में मूल्यों को चरितार्थ करेगा तभी समाज में मूल्यों का विकास हो पाना संभव है। सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् हमारी भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्य हैं लेकिन कुछ विद्वान इन तीनों मूल्यों को एक ही सत्ता के तीन पहलू मानते हैं। सौंदर्यवादी विचारकों ने मात्र 'सौन्दर्य' मूल्य को ही स्वीकार किया है, वहीं यथार्थवादी विचारकों ने महज 'सत्य' को ही स्वीकार किया है। साहित्य में मूल्यों का अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि

1. भारती, धर्मवीर. मानव मूल्य और साहित्य. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1960, पृष्ठ - 34 |

साहित्य में मूल्य न केवल मनुष्य जीवन के लिए कल्याणकारी साबित होते हैं अपितु यहाँ पर मूल्य का अर्थ समस्त संसार से लिया जाता है।

सत्य, अहिंसा, चोरी न करना, प्रेम, दया, विश्वास, करुणा, ईमानदारी, धैर्य, सहयोग, सहनशीलता, भाईचारा, सदाचार, परोपकार, निर्भीकता, संतोष एवं सेवा-भाव आदि 'मानवीय मूल्य' हैं। मूल्य मनुष्य के व्यवहार को सही दिशा प्रदान करते हैं। मानवीय मूल्य अनुभवजन्य होते हैं, जिससे मनुष्य अपने जीवन में स्थिरता, शांति और आनंद की अनुभूति प्राप्त करता है। मूल्य मनुष्य के जीवन के ऐसे मार्गदर्शक हैं, जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध होते हैं। मानव और मूल्य के सम्बन्ध में शशि सहगल 'नयी कविता और मूल्यबोध' में लिखती हैं कि 'मानव को उसके अस्तित्व में स्वीकार करके ही 'मूल्य' की कल्पना संभव हो पाती है, क्योंकि 'मूल्य' की स्थिति किसी वस्तु में न होकर मानव में है। मानव ही मूल्यों का निदर्शन या संचालन करता है और उसी की आवश्यकताओं के अनुरूप 'मूल्य' बनते-बिगड़ते रहते हैं।' 'मूल्य' मानव समाज की एक आधारशिला के समान हैं जिस पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति का भवन खड़ा हुआ है। समाज की परिस्थितियों के परिवर्तन से समय के साथ मूल्य भी बदलते रहे हैं लेकिन समाज विरोधी मूल्यों ने जन्म नहीं लिया है यदि लिया भी तो वह समय के साथ नष्ट हो गये अर्थात् समाज निर्माण में मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

कोई भी कवि जिन परिस्थितियों में कविता की रचना करता है, उसमें उस सामाजिक परिवेश को अपनी बुद्धि और भावों के माध्यम से शब्दशः प्रकट करता है। वही शब्द एक भाषा के रूप में कविता बन जाते हैं। आज का मनुष्य आर्थिक व्यवस्था के अभाव में अपने जीवन को सही दिशा नहीं दे पा रहा है क्योंकि वर्तमान में बढ़ती आर्थिक विषमता ने मनुष्य के सामने विभिन्न चुनौतियों को खड़ा कर दिया है। इन तमाम समस्याओं से मनुष्य का सामान्य जनजीवन बहुत प्रभावित हुआ है। वर्तमान समाज में 'आर्थिक मूल्य' लगातार कम होते जा रहे हैं। मूल्य मानव जीवन के सह-अस्तित्व के लिए बेहद जरूरी है

। लेकिन आधुनिकता के दौर में पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से आज का मनुष्य आत्मकेन्द्रित और संकीर्ण मानसिकता व स्वार्थी हो गया है। व्यक्ति के आत्मकेंद्रित होने से मानवीय मूल्यों की अर्थवत्ता लगातार कमतर होती जा रही है। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में मानवीय मूल्यों की तलाश करते हैं और कविताओं के मार्फ़त साहित्य और समाज में उन्हें पुनर्स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

अशोक वाजपेयी ने कविता में 'टोकनी' को हृदय का प्रतीक माना है। वैसे टोकनी का सामान्य अर्थ बाँस की लकड़ी से बने एक छोटे से पात्र से है जिसका छोटी-छोटी चीजों को रखने के लिए उपयोग किया जाता है। उसमें सब्जियाँ रखी जाती हैं, जिसकी अब कोई भी व्यक्ति जरूरत महसूस नहीं करता। अशोक वाजपेयी इसी कविता के माध्यम से वर्तमान मनुष्य में बढ़ती हुई जिजीविषाओं की ओर संकेत करते हैं। जहाँ पर किसी के हृदय में दुःख को धारण करने की क्षमता नहीं रह गई है अर्थात् दुःख मनुष्य का शाश्वत मूल्य है जो व्यक्ति के जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक साथ चलता है। उस दुःख को अपने हृदय में रखने का साहस नहीं रह गया है। आज का मनुष्य धीरे-धीरे अपने जीवन मूल्यों से दूर भागता जा रहा है। जिन्हें पुनः स्थापित करने का महत्वपूर्ण कार्य अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में करते हैं। कविता कुछ इस प्रकार है –

"यकायक पता चला कि टोकनी नहीं है।

पहले होती थी

जिसमें कई दुःख और हरी-भरी सब्ज़ियाँ रखा करते थे,

अब नहीं हैं –

दुख रखने की जगहें धीरे-धीरे कम हो रहीं हैं।”[1]

‘कहीं कोई दरवाजा’ काव्य-संग्रह की कविताओं में अशोक वाजपेयी ने नष्ट होती संवेदनाओं और मूल्यों को बचाने की सुन्दर ढंग से अभिव्यक्ति की है। वे जूतों के माध्यम से मनुष्य की संवेदनाओ के संसार को छूना चाहते हैं। वह कहना चाहते हैं कि हम चींजों की तब तक ही कीमत या जरूरत समझते हैं या मूल्यवान समझते हैं, जब तक की वह उपयोगी रहती है। वस्तुओं या चीजों के निरूपयोग होने से हमारे मन में उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता। यहाँ पर जूते दिवंगत पिता के हैं जो कि पिता के चले जाने पर उनके परिवार वालों के लिए कोई अहमियत नहीं रह गई है। कुछ समय तो वह ऐसे ही पड़े रहते हैं लेकिन जब उन पर गौर नहीं किया जाता। तब वह स्वयं ही अंत की ओर चले जाते हैं। अर्थात् अशोक वाजपेयी उन छोटी-छोटी चीजों के माध्यम से कविता में मानवीय मूल्यों की तलाश करते हैं जिन्हें समकालीन हिन्दी कविता अलक्षित कर चुकी है। तब हम कह सकते हैं कि अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में न केवल चीजों को बचाने व सहेजने की बात करते हैं अपितु वह अपनी कविताओं में छोटी-छोटी चीजों में भी जीवन-मूल्यों की तलाश करते दिखाई देते हैं। कविता का कुछ अंश दृष्टव्य है-

“उन्हें कोई हटाता नहीं था

क्योंकि वह दिवंगत पिता के थे।

फिर एक दिन वे बिला गए:

शायद अँधेरे में मौका पाकर

वे खुद ही अंत की ओर चले गए।”[2]

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 11|

2. वही, पृष्ठ – 13|

अशोक वाजपेयी अपनी कविता में बालटी को निरंतर खाली हो रहें हृदय का प्रतीक मानते हैं और उसमें भरा जाने वाला पानी हमारी भावनाएँ हैं। वर्तमान समय और मनुष्यों में अब प्रेम, करुणा, दया आदि मूल्यों के लिए अपने हृदय में कोई जगह नहीं रह गई है। हमारा हृदय एक खाली बालटी के समान हो गया है जिसमें पानी अर्थात् भावनाएँ बनी रहने का मात्र सपना है। मनुष्य के हृदय में भावनाओं का धीरे-धीरे कम होना बालटी से पानी के कम होने के सामान है। यहाँ इस कविता के माध्यम से अशोक वाजपेयी भावनाओं की पड़ताल करते हैं। कविता कुछ इस प्रकार है-

"पानी कम हो रहा है, अक्सर कम पड़ जाता है –

बालटी का खालीपन बढ़ता रहता है।

वह भरेपन का सपना अब कम देखती है।"[1]

'अब तो' कविता में अशोक वाजपेयी ने समाज में नष्ट होती संवेदनाओं को केंद्र में रखा है। आज के समय में बढ़ते हुए आतंकवाद, हत्या, लूटमार आदि के चलते भी वह विद्रोही स्वर व्यक्त नहीं करते बल्कि सहजता से अपनी कविता में संवेदनाओं के नष्ट होने पर चिंता जाहिर करते हैं। वे कहते हैं कि अब तो चीत्कार भी कोई नहीं सुनता विलाप की कौन कहे। अर्थात् वर्तमान में बढ़ते हुए नरसंहारों से जो चीखें उठती हैं। जब उन्हें कोई सुनने वाला नहीं है तो फिर मौन में किए गए विलाप पर किसका ध्यान जाए। सरेआम हो रहे कत्लेआम पर भी कोई नहीं सोचता। अर्थात् मनुष्य के प्रति मनुष्य का लगाव कम होता जा रहा है। मनुष्य की मानवीय संवेदनाएँ नष्ट होती जा रही हैं। ऐसे में अशोक वाजपेयी उन नष्ट होती हुई संवेदनाओं की कविताओं में पड़ताल कर उन्हें अपनी कविता के मार्फ़त बचाने का प्रयास करते हैं। कविता का अंश दृष्टव्य है –

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 54 |

"अब तो

चीत्कार को भी कोई नहीं सुनता

विलाप कि कौन कहे !

...

अब तो

मारा जाता है दिनदहाड़े कोई बीच सड़क पर

और कोई नहीं रुकता !"[1]

अशोक वाजपेयी मूल्य के प्रति सजग कवि हैं जिसका उदाहरण उनकी विभिन्न कविताओं में देखा जा सकता है। 'चुपचाप कुछ भी नहीं था' यह कविता संस्कृति की चेतना से सम्बद्ध है, जिसमें सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास पर अशोक वाजपेयी चिंता जताते हैं। मिट्टीके बरतन बाँस की टोकनियाँ आदि जो हमारी सांस्कृतिक पहचान थी, जो एक परंपरा के रूप में चली आ रही थी। वह परम्पराएँ अब धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है। आधुनिकता की चपेट में आज का मनुष्य इतना आधुनिक बनता जा रहा है कि वह अपनी सांस्कृतिक पहचान भी नष्ट कर चुका है। भारतीय संस्कृति में कलाओं को महत्वपूर्ण माना गया है। आज आधुनिक सुख-सुविधा वाली मशीनों ने भारतीय संस्कृति पर घातक प्रहार किया है जिससे कुम्हार की कला का कोई मूल्य नहीं रह गया है। साथ ही सामान्य मनुष्य के आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। कविता का अंश दृष्टव्य है –

"अब कहीं नहीं जा रहीं सीढियाँ

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 63।

वहीं पर रखा

और भुला दिया गया

मिट्टी का वर्तन

चुपचाप कुछ भी नहीं था।"[1]

मूल्य सामाजिक संबंधों, सामाजिक व्यवहारों में समानता लाने में एवं संतुलन बनाये रखने में सहायक सिद्ध होते हैं क्योंकि मूल्य समाज में रहने वाले मनुष्यों की आंतरिक भावनाओं पर आधारित होते हैं। मूल्यों के आधार पर हम मनुष्य में निहित समाज के प्रति भावनाओं का मूल्यांकन कर सकते हैं। भारतीय दृष्टिकोण में मूल्य का सम्बन्ध मनुष्य के जीवन से स्वीकार किया गया है जिसमें भारतीय ऋषिमुनियों और आचार्यों ने मानव जीवन को सर्वश्रेष्ठ बनाने एवं परमानन्द की प्राप्ति के लिए जिन चार पुरुषार्थों का निर्माण किया है, उन्हें ही जीवन मूल्य माना है। इनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हैं। 'धर्म' का अर्थ हमारे मानवीय धर्म जैसे- हिंसा, चोरी आदि न करने से लिया गया है। 'अर्थ' को जीवनयापन के लिए आर्थिक जरूरतों से लिया गया है। 'काम' का अर्थ हमारे जीवन कर्म से लिया गया है। 'मोक्ष' का अर्थ इन सब के सही ढंग से पालन करने पर मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है, से लिया गया है। इन चार पुरुषार्थों के द्वारा मनुष्य के आधुनिक विज्ञान के विभिन्न अविष्कारों ने मानव जीवन की पद्धति को काफी हद तक प्रभावित किया है, साथ ही जीवन को जीने, जानने और समझने की एक नवीन दृष्टि प्रदान की है। वैज्ञानिक अविष्कारों से एक ओर जहाँ हम अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुए हैं वहीं दूसरी ओर हम अपने जीवन मूल्यों से भी दूर होते जा रहे हैं।

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2016, पृष्ठ – 43 |

''कहीं कोई दरवाजा' : अंतर्वस्तु एवं दर्शन' के अंतर्गत हमने अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में विद्यमान संवेदना एवं दर्शन या विचार का अध्ययन किया है। जिसमें हम देखते हैं कि अशोक वाजपेयी ने इस काव्य-संग्रह में समाज, संस्कृति, दर्शन, प्रकृति, प्रेम-सौन्दर्य, मानवीय मूल्य और संवेदना से सम्बंधित महत्वपूर्ण कविताएँ दृष्टव्य हुई हैं। ये कविताएँ संवेदनात्मक स्तर पर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं क्योंकि इन कविताओं मानवीय मूल्यों एवं संवेदनाओं की पड़ताल कर उन्हें मनुष्य, समाज व साहित्य में पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय

‘कहीं कोई दरवाजा’ में शिल्पगत वैशिष्ट्य

अशोक वाजपेयी के काव्य संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ की कविताओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, प्रकृति एवं प्रेम-सौन्दर्य तथा मानवीय मूल्यों के अनुशीलन के पश्चात कविताओं की शिल्पगत विशेषताओं को रेखांकित करने का प्रयास करना होगा। अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ की कविताओं में शिल्पगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करने से पूर्व शिल्प के स्वरूप का अध्ययन करना अधिक समीचीन होगा।

‘शिल्प’ शब्द के लिए अंग्रेजी में ‘टेकनिक’ शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसे ‘कन्स्ट्रक्शन’ ‘फॉर्म’ एवं ‘डिजाईन’ आदि कहते हैं। हिन्दी में कृति की ‘संरचना’ या ‘बनावट’ को कृति का शिल्प कहते हैं। संरचना शब्द अंग्रेजी के ‘कन्स्ट्रक्शन’ का हिन्दी पर्याय है। हिन्दी में संरचना या शिल्प शब्द एक व्यापक अर्थ का द्योतक हैं। ‘हिन्दी शब्दकोश’ में डॉ. हरदेव बाहरी ने ‘शिल्प’ शब्द का अर्थ “**हस्तकला’ एवं ‘दस्तकारी**”[1] से लिया है। हिन्दी साहित्य में काव्य के सन्दर्भ में जब भी हम कविता के शिल्प की बात करते हैं तब कृति की रचनाप्रक्रिया में प्रयुक्त जिन उपादनों का प्रयोग करते हैं, उनमें भाषा, प्रतीक, बिम्ब, लय, छंद आदि आते हैं। इन्हें शिल्प के तत्त्व भी कहा जाता है। कृति के निर्माण में जिन उपादानों की सहायता से रचना का ढाँचा तैयार किया जाता है, वही ‘शिल्प’ कहलाता है। उमाकान्त गुप्त शिल्प को काव्य रचना के तत्व मानते हुए लिखते हैं कि “**काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य के शिल्प तत्त्व कहे जाते हैं। शिल्प-**

1. बाहरी, हरदेव. हिन्दी शब्दकोश. नई दिल्ली : राजपाल एण्ड संस, सन 2016, पृष्ठ – 554 |

विधि रचना की उन प्रमुखताओं का लेखा-जोखा है, जिनके आधार पर रचना मूर्त हो चुकी है, विशिष्ट भंगिमा के साथ लेखनी के द्वारा अवतरित होते हैं।"[1]

केदारनाथ सिंह अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान' में शिल्प को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि "**बिम्ब वह शब्द है, जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।**"[2] वहीं कमल किशोर गोयनका का शिल्पविधान के सन्दर्भ में मानना है कि "किसी भी रचना का प्रारंभ से लेकर अंत तक कौशलपूर्ण संयोजन व्यवस्था अथवा प्रबंध शिल्प-विधान कहलाता है।"[3] कविता के सन्दर्भ में शिल्प का महत्वपूर्ण आयाम भाषा में रहता है क्योंकि भाषा में शब्द की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शब्द के अभाव में भाषा की कल्पना ही नहीं की जा सकती क्योंकि वह शब्द ही है जिससे भाषा को स्वरूप और अर्थ प्राप्त होता है। काव्य की रचना प्रक्रिया एवं शिल्प के सन्दर्भ में मुक्तिबोध लिखते हैं कि "**एक कवि अपने भाव-स्वाभाव से घनिष्ट रूप से परिचित होकर, उचित चित्रों, ध्वनियों तथा प्रतीकों के द्वारा उन्हें प्रकट करने का प्रयत्न करता है।**"[4]

कविता के शिल्प में कविता की भाषा कविता में प्रयुक्त प्रतीक और बिम्ब-विधान का महत्वपूर्ण स्थान होता है। कविता में प्रयुक्त भाषा, प्रतीक और बिम्ब कविता के प्रमुख शिल्प तत्व या उपादान माने जाते हैं। कविता के शिल्प तत्वों या उपादानों के सन्दर्भ में कैलाश वाजपेयी लिखते हैं कि **"मौटे तौर पर कहा जा सकता है कि 'काव्य-कृति' के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा कविता का ढाँचा तैयार**

---

1. गुप्त, उमाकान्त, नई कविता के प्रबंधकाव्य शिल्प और जीवन दर्शन. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन 2000, पृष्ठ - 190 |

2. वही, पृष्ठ – 190 |

3. सिंह, योगेन्द्र प्रताप. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका. इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2007, पृष्ठ – 09 |

4 जैन, नेमीचंद. मुक्तिबोध रचनावली (भाग-5). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2011, पृष्ठ – 190 ।

किया जाता है ये सब काव्य-शिल्प के तत्त्व कहे जाते हैं।"[1] कोई भी साहित्यकार जब अपने भावों और विचारों को संप्रेषित करने के लिए अपनी कृति में जिन विधियों एवं तकनीक या उपादानों को अपनाता है। उसे शिल्प कहते हैं।

3.1 समकालीन काव्य-भाषा और अशोक वाजपेयी की कविता :

समकालीन कविता की भाषा और अशोक वाजपेयी की कविता का अध्ययन करने से पूर्व हमें 'समकालीन' शब्द का अध्ययन करना आवश्यक होगा। समकालीन कविता क्या है ? विभिन्न समकालीन कवियों की कविता की भाषा क्या है ? समकालीन कविताओं की भाषा में अशोक वाजपेयी की काव्य-भाषा किस प्रकार की है ? आदि इन महत्वपूर्ण बिन्दुओं का अध्ययन करना आवश्यक होगा।

'समकालीन' शब्द अंग्रेजी के '**CONTEMEMPORARY**' शब्द का हिन्दी पर्याय है। 'हिंदी शब्दकोश' में डॉ. हरदेव बाहरी ने समकालीन शब्द का अर्थ 'एक ही समय का, या 'समसामयिक' माना है। समकालीन एक व्यापक एवं बहुआयामी शब्द है जो आधुनिकता का आधार तत्त्व है। यह आवश्यक नहीं है कि जो समकालीन होगा वह आधुनिक भी हो। समकालीन कविता ने बदलते जीवनमूल्यों को मानवीयता के स्तर पर स्थापित करने का प्रयास किया है। समकालीनता वर्तमान जीवन की स्थितियों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। जिस समय मनुष्य जीवनयापन कर रहा है उस समय की समस्याओं से साथ मुठभेड़ करना समकालीनता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में साहित्य-सृजन के जो विविध आयाम विकसित हुए हैं जिन्हें विभिन्न दशकों में अलग-अलग नामों से अभिहीत किया गया है। उनमें 'समकालीन साहित्य' एक ऐसा नाम है, जो समकालीनता या वर्तमान समय के साहित्य का द्योतक है। इसमें वर्तमान समय और समाज की परिस्थिति और मनुष्य का जीवन संघर्ष है। समकालीनता से

1 धर्मवीर, अशोक बनाम वाजपेयी : अशोक वाजपेयी. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ – 13।

अभिप्राय अपने वर्तमान समय से है। 'मानक हिन्दी शब्दकोश' में 'समकालीन' शब्द का अर्थ 'जो उसी काल या वर्तमान समय में हो' से लिया गया है।

साहित्य में समकालीनता का अर्थ एक काल विशेष के साथ-साथ चेतना से भी जुड़ा हुआ है। स्वतंत्रता पूर्व भारतीय जनता में जो आजादी का सपना पल रहा था स्वतंत्रता के पश्चात् की स्थिति में जो असमानता और राजनीतिक अस्थिरता का दौर आया जिससे उस समय के समाज व साहित्य में व्यवस्था के विरूद्ध जो प्रखर स्वर दिखाई दिए हैं, वहीं से समकालीन साहित्य का उद्भव हुआ। सन् 1962 ई. में हुए भारत-चीन युद्ध के पश्चात् उपजी नवीन आधुनिक भारतीय चेतना से लिया जाता है। समकालीन होना अपने समय से संवाद करना है। वर्तमान में हम जिस समय और समाज में रहते हैं उस समय की सामाजिक राजनैतिक आदि स्थितियों से परिचित होना समकालीन है। समकालीनता के सन्दर्भ में रघुवीर सहाय लिखते हैं कि "**मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है।**"[1]

'समकालीनता' में समय के यथार्थ स्वरूप का वर्णन रहता है जिसमें हम जी रहे होते हैं। समकालीन से एक आशय 'समय के प्रति ईमानदार होना' भी है। समकालीन एक काल में साथ-साथ जीना मात्र नहीं है बल्कि समकालीन समय व समाज की समस्याओं और चुनौतियों का डटकर 'मुकाबला' करना है। उन विभिन्न समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखने वाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होती है। समकालीनता के सन्दर्भ में डॉ. बलदेव बंशी लिखते हैं कि "**समकालीनता वह चेतना है, जो सामयिक सन्दर्भों और तकाजों के तहत विशिष्ट सन्दर्भों से ही स्वरूप लेती है, उनके बिना उसकी स्थिति संभव नहीं है।**"[2] स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में हुए सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक आदि परिवर्तनों को समकालीन

1. नवल, नंदकिशोर. समकालीन काव्य यात्रा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2004, पृष्ठ - 08।

2. सोनटक्के, माधव. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ. कानपुर : चिंतन प्रकाशन, 1988, पृष्ठ – 09।

हिन्दी साहित्य में स्पष्टतः देखा जा सकता है । यही समकालीन साहित्य की विशेषता है । वस्तुतः समकालीनता का सीधा सम्बन्ध समसामयिकता से ही लिया जाता है। किसी भी रचनाकार की वह कृति समकालीन कही जायेगी जिसमें अपने समय की परिस्थितियों का बोध हो, अपने समय में हुए विभिन्न परिवर्तन से वाकिफ और उसकी चुनौतियाँ हों।

समकालीन हिन्दी कविता का प्रस्थान बिन्दु सन् **1962** ई. में हुए भारत-चीन युद्ध के पश्चात भारतीय समाज में उपजी मोहभंग की स्थिति से माना है लेकिन एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप में "**'समकालीन कविता' आन्दोलन का प्रवर्तन डॉ. विशम्भरनाथ उपाध्याय ने सन् 1976 ई. में अपनी पुस्तक 'समकालीन कविता की भूमिका' के माध्यम से किया है ।**"[1] समकालीन हिन्दी कविता साधारण जन-जीवन के संघर्षों, विसंगतियों, सामाजिक विषमताओं एवं व्यक्ति के अंदर चल रहे अंतर्विरोधों की कविता है। समकालीन कविता के सन्दर्भ 'धूमिल' अपनी एक कविता में लिखते हैं कि "कविता **शब्दों की अदालत में / अपराधियों के कटघरे में खड़े/ एक निर्दोष आदमी का हलफनामा है** ।"[2]

समकालीन कविता मनुष्य के जीवन का यथार्थ है जिसमें उसका वर्तमान जीवन संघर्ष, समाज, संस्कृति, धर्म, मानवता एवं अधिकार आदि सब समाहित है। समकलीन कविता को परिभाषित करते हुए रोहिताश्व लिखते हैं कि "**समकालीन कविता यथार्थ के धरातल पर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में आत्म-चेतस व्यक्ति की भाषागत संवेदनात्मक अभिव्यक्ति है; जो जीवन-संघर्ष में विभिन्न रागात्मक बोधों व मानव मूल्यों, मानव अधिकार के सृजनात्मक पक्ष की पहल ही नहीं करती; बल्कि प्रतिबद्ध रूप से सामाजिक विकास के वर्गहीन सौन्दर्यात्मक**

1. पाण्डेय, सरस्वती/ गोविन्द पाण्डेय, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास. इलाहबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन, 2014, पृष्ठ – 217 |
2. वही, पृष्ठ - 225 |

संसार की रचनात्मक पक्षधर भी है ।"[1] समकालीन कविता में स्वातंत्र्योत्तर भारत के जीवन संघर्ष का सौन्दर्यबोध कविता की केन्द्रीय भावना के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

समकालीन कविता में प्रगतिशील चेतना का विचार महत्वपूर्ण है जो जनवादी पक्षधरता के साथ-साथ मनुष्य द्वारा किए जा रहे नवीन सृजनात्मक अविष्कारों का सौन्दर्यबोध भी कराती है। समकालीन हिन्दी कविता वर्तमान मनुष्य के सृजनात्मक चेतना के रूपांतरण को भाषा में व्यक्त करने का सबसे सरल माध्यम है। समकालीन कविता व्यक्ति पर केन्द्रित न होकर समाज और देश दुनिया आदि विभिन्न विषयों को प्रश्रय देती है। समकालीन कविता के सन्दर्भ में नंदकिशोर नवल लिखते हैं कि "**हिन्दी कविता कल्पना और मिथक से यथार्थ की ओर, व्यक्ति से समाज की ओर और असाधारण से साधारण की ओर विकसित हुई है, निश्चय ही जटिल रूप में, क्योंकि इस यथार्थ के साथ कल्पना और मिथक, को समाज के साथ व्यक्ति को और साधारण के साथ असाधारण को छोड़ा नहीं गया। कुल मिलकर हिन्दी की समकालीन कविता विद्रोह की कविता है, वह विद्रोह भले कहीं पूर्णतया प्रकट हो ओर कहीं दबा हुआ, या व्यंग्य हो ।**"[2] समकालीन कविता के बारे में अशोक वाजपेयी, विजय कुमार से एक सलाक्षत्कर में कहते हैं कि "**समकालीन का अर्थ सिर्फ अपने समय से वाबस्ता होना भर नहीं है, उसके एक अर्थ, कम से कम भारत जैसी सभ्यता में, कई कालों से सम में होना भी चाहिए। अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, श्रीकान्त वर्मा आदि ऐसे कवि हैं ।**"[3] अशोक वाजपेयी कविता को जीवन की समग्रता में देखते हैं। वे अपने जीवन में जो कुछ भी तलाशते हैं। वह कविता और अपने जीवन को जीने दृष्टि मानते हैं। उस जीवनदृष्टि के अभाव में न तो मनुष्य का जीवन संभव है और न कविता।

---

1. रोहिताश्व, समकालीन कविता और सौन्दर्यबोध. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1996, पृष्ठ – 17 |
2. नवल, नन्दकिशोर. समकालीन काव्य यात्रा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2004, पृष्ट – 10 |

3. वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 1998, पृष्ठ – 116 |

समकालीन हिन्दी कवियों में रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण साही, कुँवर नारायण, श्रीकांत वर्मा, केदारनाथ सिंह, चन्द्रकान्त देवताले, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी लीलाधर जगूड़ी आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। समकालीन हिन्दी कविता में रघुवीर सहाय की कविता का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उन्हें आज के सामाजिक ढाँचों से मनुष्य का सर्वांगीण विकास अवरुद्ध होता दिखाई देता है। इसी अवरूद्ध होते हुए विकास के मार्ग में उनकी कविता एक मशाल बनकर उभरती है। जिसमें अवरोधों, अंतर्विरोधों और विसंगतियों का सामना प्रखर भाषा में हुआ है। रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में वे सरल भाषा में कोई सरल बात नहीं कहते, पाठकों को समस्या की स्थिति को पेचीदगी के साथ परिचित कराते हैं। स्थिति में निहित विडम्बनाओं को वे तुरंत पकड़ लेने का माद्दा रखते हैं। रघुवीर सहाय स्थिति की भयावहता को सशक्त ढंग से चित्रित करते हैं। उनकी काव्य-भाषा से ऐसा परतीत होता है कि वे रिपोर्टिंग कर रहे हैं। उस रिपोर्टिंग में फैंटेसी की अभिव्यक्ति होती है, जिससे उनकी कविता कोटि की सृजनात्मकता के उच्च स्तर तक उठ खड़े होने में समर्थ हो जाती है।

रघुवीर सहाय की काव्य-भाषा में एक पत्रकार की भाषा का गुण विद्यमान है। उनकी भाषा अखबारी भाषा के सामान लगती है। रघुवीर सहाय की कविता के बारे में स्वयं अशोक वाजपेयी अपने आलोचना ग्रन्थ फ़िलहाल में लिखतें है कि "**रघुवीर सहाय इस दुनिया को चरितार्थ करने के लिए अपनी भाषा और मुहावरे का उचित विस्तार करते हैं उनकी भाषा में पहले चौका-बाजार का सुथरापन और रवानगी थी। जीने के कर्म की अपनी इस परिभाषा के लिए वह बाजार, संसद, राजनेता, अख़बार, भीड़, भाषण, नारे आदि के कई मुहावरों को गूँथकर अपना निजी मुहावरा**

विकसित और विन्यस्त करते हैं।"[1] अशोक वाजपेयी के इस वक्तव्य से स्पष्ट होता है कि रघुवीर सहाय की कविता की भाषा में अखबारी भाषा का सामंजस्य देखने को मिलता है –

"700 मर गए अख़बार कहता है

खण्डहर और लाश दूरदर्शन दिखता है

बहुत-सी ख़बरें मेरे अन्दर से आती हैं

सबको चीर कर हहराती।"[2]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की काव्य भाषा में समाज को केंद्रीकरण की प्रक्रिया से जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रयास किया गया है। इनकी कविताओं में परंपरागत व व्यवहारगत शब्दावली का प्रयोग मिलता है। इनकी कविताओं में प्रयोग के स्तर पर और अर्थ की दृष्टि से भी सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थ वाले शब्दों में भी काफी विस्तार दिया है सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता के सन्दर्भ में परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं कि **"सर्वेश्वर ने अनेक छंदों और रूपों का व्यवहार किया और अपनी कविता में एक दिलचस्प विविधता पैदा करने का प्रयास किया जिसके पीछे ठेठ किसानी संवेदना और प्रत्यक्ष परिवेश बोध की ताकत है।"**[3]

"मुझे लगा मैं किसी की आँखों में नहीं

गाँव के किसी ताल में

---

1. वाजपेयी, अशोक. फ़िलहाल . नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. 2007, पृष्ठ – 125 |

2. शर्मा, सुरेश. रघुवीर सहाय प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन 2013

3. श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन हिन्दी कविता. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 2012, पृष्ठ – 11 |

झाँक रहा हूँ

जिसके तट की मेंड़ पर

किसी प्लेग से भाग कर आये

असहाय लोग खड़े हैं।

चेहरों की उस भीड़ में

मेरा चेहरा खो गया है।"[1]

समकालीन हिंदी कवियों में विजयदेव नारायण साही की काव्य-भाषा में आवेग की, आक्रोश की या तीखा प्रहार करने की गंध आती है साथ ही थिर हो गये गुस्से में आत्मालोचन करती हुई भाषा है। विजयदेव नारायण साही की काव्य-भाषा में आत्मालोचन से मेरा अभिप्राय किसी प्रकार का बासीपन या मरी हुई भाषा से नहीं है बल्कि उनकी काव्यभाषा में संसार को स्पर्श करने का बहुत गहरा ताप छोड़ जाते हैं। विजयदेव नारायण साही की कविता की भाषा चुनौती बनकर सामने नहीं आती, बल्कि भयानक स्थिति में भी ख़ामोशी के साथ अपनी बात को सरल ढंग से कह जाते हैं। विजयदेव नारायण साही की कविताओं पर लिखते हुए नंदकिशोर नवल कहते हैं कि "साही निश्चय ही उदात्त कल्पना और भावना के कवि थे। यह उदात्तता उन्हें 'स्वनिर्मित केंद्र' से बाहर आकर अटूट और अछोर फैले हुए मानव-समाज से अपने को जोड़ने से प्राप्त हुई थी। ताज्जुब नहीं कि साहित्यकार के दायित्व पर व्याख्यान देते हुए उन्होंने यह कहा था कि साहित्यकार ब्रह्माण्ड का भी एक सदस्य है।"[2]

---

1. श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन हिन्दी कविता. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 2012, पृष्ठ – 108 |

2. नवल, नंदकिशोर. समकालीन काव्य यात्रा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2004, पृष्ठ - 34 |

"इसी शताब्दी ने

मुझे तुम्हें दोनों को

गंभीर शब्दों वाली वाणी दी है

देखता हूँ पहले कौन चीखता है ?"[1]

समकालीन हिंदी कवियों में कुंवर नारायण ने मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए सामाजिक नियमों को मानना उचित माना है। लेकिन ये नियम तब तक मान्य हो सकते हैं जब तक कि व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक न हो। उनके यहाँ व्यक्ति की स्वतंत्रता का सर्वोच्च मूल्य है। कुँवर नारायण की कविताएँ महज आत्मसाक्षात्कार का माध्यम नहीं है बल्कि समाज में मनुष्य की हालत के बनने और बिगड़ने की भी गहरे अर्थों में पड़ताल करती हैं। कुँवर नारायण की कविताएँ महज नैतिक मूल्यों की तलाश नहीं करती बल्कि वह कविता लिखना भी अपने आप में एक नैतिक कर्म मानते हैं। इनकी कविता में जीवन का गहन अनुभव दृष्टिगोचर होता है। मुक्तिबोध ने सन् 1964 ई. में ही उनकी कविता के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए कहा था कि वह 'अन्तरात्मा की पीड़ित विवेक-चेतना और जीवन की आलोचना' के कवि हैं। कुँवर नारायण की कविताओं के सन्दर्भ में विष्णु खरे अपने आलोचना ग्रन्थ 'आलोचना की पहली किताब' में लिखते हैं कि 'ये कविताएँ कोई अस्तित्ववादी या काफ्का कम्यूनुमा छद्म नहीं है, वे दरअसल एक बर्फीला चीत्कार हैं जो चीजों को देख-समझ पाने वाले बीसवीं सदी के मस्तिष्क में लगातार गूँजता रहता है।

समकलीन हिन्दी कविता अपने समय व परिस्थितियों के साथ उपजे अंतर्विरोधों से लड़ने की कविता है। कुँवर नारायण की काव्य-भाषा में बदलते हुए मिजाज को लक्ष्य किया जा सकता है।

---

1. श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन हिन्दी कविता. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 2012, पृष्ठ – 124 |

आरंभिक कविताओं पर नयी कविता के दौर की काव्यभाषा की स्वभाविक छाप स्पष्ट है। इस छाप के बावजूद छटपटाहट है, कविता के वाक्य विन्यास को आरोपित सजावट से मुक्त कर सहज वाक्य-विन्यास के निकट लाने की। कविता के पूर्व की जो किसी वाद या विचारधाराओं से जुड़ी कविताएँ हैं उनपर भी अपने समय का प्रभाव रहा है। लेकिन आज की कविता में जो सीधी यथार्थता झलकती है। वह पूर्ववर्ती कविताओं में तलाशना निरर्थक है। कुँवर नारायण कविता में लिखते हैं कि -

"नहीं चाहिए तुम्हारा यह आश्वासन्

जो केवल हिंसा से अपने को सिद्ध कर सकता है।

नहीं चाहिए यह विश्वास, जिसकी चरम परिणति हत्या हो।

मैं अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु हूँ।

अपनी नास्तिकता में अधिक धार्मिक।

अपने अकेलेपन में अधिक मुक्त।

अपनी उदासी में अधिक उदार।"[1]

श्रीकान्त वर्मा की कविताओं में न केवल मनुष्य के अंतर्मन के द्वंद्व हैं बल्कि सामाजिक यथार्थ की भयानकता भी है। श्रीकान्त वर्मा की कविताएँ जीवन की इच्छा को प्रकट करती हैं। श्रीकान्त वर्मा की कविताओं की उपलब्धि यह है कि उनकी कविताएँ, कविता के प्रति प्रचलित रूप का अतिक्रमण भर नहीं करती। बल्कि कविता के शब्द विन्यास में कुछ ऐसा जोडती है जिसमें नया सृजनात्मक आघात देने की भी ताकत छिपी हुई है। इनकी कविता में उदासीनता तो नहीं है। लेकिन इनकी काव्यभाषा राजनैतिक

---

1. त्रिपाठी, अरविन्द. कुँवर नारायण की प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2014 पृष्ठ - 07 |

सच्चाई से वैसा साक्षात्कार नहीं करती है जैसा कि रघुवीर सहाय की कविता करती हुई नजर आई है। श्रीकान्त वर्मा की काव्य भाषा को नाटकीय भाषा की संज्ञा देते हुए 'फ़िलहाल' आलोचना ग्रन्थ में अशोक वाजपेयी लिखते हैं कि "श्रीकान्त वर्मा का काव्य-संसार भाषा में एक ऐसे संसार की पुनर्रचना है जो अराजक, अव्यवस्थाहीन और अर्थहीन है, जिसमें संस्थाएं, सम्बन्ध और जीवन-दृष्टियाँ गड्ड-मड्ड और व्यर्थ हो गई हैं। कविता की मुख्य थीम, बहुत स्थूल ढंग से कहें तो, संसार और व्यक्ति के बीच का असंतुलन है, जो वैसे भी बहुत सारे आधुनिक साहित्य की थीम रही है। इस असंतुलन की जो परिभाषा श्रीकान्त वर्मा अपनी नाटकीय भाषा के माध्यम से करते हैं, वह निश्चय ही रोचक और विशिष्ट होते हुये भी ऐसी है जो हमें अपनी जानी-पहचानी दुनिया को कुछ चौंककर और सीधे देखने की ओर ले जाती है।"[1] श्रीकांत 'मगध' कविता में लिखते हैं कि -

"सुनो भाई घुड़सवार मगध किधर है

मगध से आया हूँ

मगध

मुझे जाना है।"[2]

समकालीन कवियों में केदारनाथ सिंह की कविताएँ समकालीन मनुष्य की एक ऐसी दुनिया रचती हैं जिसमें अनेकों रंग दिखाई देते हैं। इनकी कविताओं से गुजरना जीवन और समाज के विभिन्न कोनों में झाँकना है। केदारनाथ सिंह शायद समकालीन हिन्दी कविता में अकेले ही ऐसे कवि हैं जो एक साथ गाँव और शहर दोनों प्रकार की कविताओं को रचने में समर्थ हैं। इस सन्दर्भ में परमानन्द श्रीवास्तव और अनिल त्रिपाठी लिखते हैं कि "केदारनाथ सिंह शायद हिन्दी के समकालीन काव्य-परिदृश्य में अकेले ऐसे

---

1. वाजपेयी, अशोक. फ़िलहाल. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1970, पृष्ठ – 109 |
2. श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन हिन्दी कविता. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 2012, पृष्ठ – 134 |

कवि हैं, जो एक साथ गाँव के भी कवि हैं और शहर के अनुभव के दोनों छोर कई बार उनकी कविता में एक ही साथ और एक विशेष बनावट है जिसे नकारकर सच्ची भारतीय कविता नहीं लिखी जा सकती।"[1] केदारनाथ की कविताएँ मनुष्य के नजदीक जीवन की कविताएँ हैं या यह कहें कि उनकी कविता ही जीवन-सा प्रतीत होता है। उनकी कविताओं में मनुष्य के जीवन का संघर्ष गहरे अर्थों में देखने को मिलता है, जिसमें गरीबी और भूख में भाषा की रोटी का एक नया स्वाद है। केदारनाथ सिंह की कविताओं में गद्यात्मक वाक्य-विन्यास का प्रयोग मिलता है। इस सन्दर्भ में देखा जाये तो अशोक वाजपेयी की काव्य-भाषा में भी गद्य का प्रयोग देखने को मिलता है। केदारनाथ सिंह का काव्य-संसार समकालीन भारतीय समाज के प्रति गहरी संवेदनात्मक उन्मुखता या समाज के प्रति लगाव का द्योतक है। उनकी भाषा में शहरी एवं ग्रामीण शब्दावली का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। कवितांश दृष्टव्य है -

"ठण्ड से नहीं मरते शब्द

वे मर जाते हैं साहस की कमी से

कई बार मौसम की नमी से

मर जाते हैं शब्द।"[2]

अरुण कमल समकालीन हिन्दी कविता के एक ऐसे हस्ताक्षर है जो एक ओर कविता की भाषा को सरल बना रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर उसकी काव्यात्मक सम्प्रेषणीयता में भी व्यापक विस्तार किया है। साथ ही आलंकारिकता को भी मुक्त रखा है। अरुण कमल सच्चे अर्थों में एक जीवनधर्मी कवि के रूप में समकालीन कविता में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जीवनधर्मी होने से मेरा आशय उनकी

1. त्रिपाठी, अनिल. केदारनाथ सिंह प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2015, पृष्ठ -05।
2. वही, पृष्ठ - 115 ।

कविताओं में वह सबकुछ समाहित है जो समकालीन समाज की चुनौतियाँ और संघर्ष हैं । इनकी कविताओं में प्रेम, करुणा, संघर्ष, उत्साह, कर्म-सौन्दर्य की पहचान, साहस, प्रकृति के प्रति लगाव, समय की चेतना, इतिहास बोध आदि । इस मानी में देखा जाये तो अशोक वाजपेयी और अरूण कमल की कविताओं में एक हद तक समानता लक्षित होती है । अरूण कमल की काव्य भाषा में एक सजग आधुनिक कवि की छवि दिखाई देती है । इनकी काव्य भाषा में जीवन को सही अर्थों में समझने की कोशिश की गई है । इनकी भाषा में सहजता और कविता को स्पष्टतः समझा जा सकता हैं क्योंकि इनकी काव्य भाषा मनुष्य के जीवन अनुभवों की भाषा है -

"जो आदमी दुःख में है

वह बहुत बोलता है

बिना बात के बोलता है

वह कभी चुप्प स्थिर बैठ नहीं सकता ।"

समकालीन हिन्दी कवियों में चन्द्रकान्त देवताले की कविताएँ मानवीय संघर्ष, व्यक्ति के विभिन्न शोषणों तथा अन्याय के प्रतिरोध की कविताएँ हैं । इनकी कविताएँ गहन मानवीय संवेदनाओं की कविताएँ हैं । उसमें उनकी अपनी अलग भाषा नहीं है बल्कि अपने ही समाज की भाषा है । जो उन्हें समकालीनता के दायरे में बनाये रखती है । चन्द्रकान्त देवताले की काव्य-भाषा में समकालीन काव्य भाषा की परम्परा का प्रभाव लक्षित होता है । क्योंकि वह परम्परागत भाषा की आदतों से मुक्ति पाने के लिए वक्रता और विडम्बनापूर्ण कथनों की जो युक्ति अपनाते हैं । वह भी उनके यहाँ एक सीमा के बाद अभ्यास या रूढ़ी बन जाती है ।

मंगलेश डबराल समकलीन हिन्दी कविता के उन नए कवियों में हैं जिन्हें कवि-कर्म और कविता की भाषा की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जटिलताओं और चुनौतियों का निरंतर एहसास है। मंगलेश डबराल की कविताओं में वर्तमान मनुष्य का दुःख, थकान, उदासी और निराशा के अनुभव विभिन्न रूपों में मौजूद पाए जा सकते हैं। मंगलेश डबराल की कविता की भाषा में स्पष्टता और अर्थ सघनता का अद्भुत सम्बन्ध दिखाई देता है। इनकी की कविताएँ महज जीवन और समाज के साक्षात्कार नहीं बल्कि जीवन के मार्मिक साक्षात्कार की सरल भाषा में रची कविताएँ हैं। मंगलेश डबराल की कविताओं में आधुनिक मनुष्य का तनाव है। जबकि अशोक वाजपेयी की कविताओं में ऐसा नही। मंगलेश अपनी कविता में एक ऐसी दुनिया के बारे में अक्सर सोचते रहते हैं जो धीरे-धीरे अपने चारों तरफ से दरवाजों को बंद करते जा रहे हैं। मंगलेश डबराल की प्रारंभ से लेकर अब तक की कविताओं में रचना कर्म की व्यर्थता या सार्थकता को लेकर एक गहन वेदना-भरी जिरह चलती रहती है। मंगलेश डबराल अपनी कविताओं के शब्दों को आम जन की भाषा से जोड़कर रचते हैं। इसलिए उनकी कविता की भाषा में जन साधारणता व सरलता के साथ सादगी भी मौजूद मिलती है। मंगलेश डबराल की कविताओं में भाषा की सरलता होने से अधिक सम्प्रेषणीय है -

"तारीखें चिल्लाती हैं भूख तारीखें

माँगती हैं न्याय

कुछ ही तारीखें हैं जो निर्जन रहती हैं

पुराने मकानों की तरह

उदास काली खोखली तारीखें।"[1]

समकालीन कविताओं के इस व्यापक परिदृश्य में राजेश जोशी की कविताएँ समकालीन हिन्दी कविता संसार में एक नवीन संस्कृति की स्थापनाएँ करती हैं, जिसमें, हत्या, लूट, वंचना, भ्रष्टाचार, गरीबी और असुरक्षा से मनुष्य को मुक्ति मिल सके। उनकी कविताएँ मनुष्य जीवन से सम्बंधित समस्याओं की सहज भाषा में महज पड़ताल ही नहीं करती बल्कि उन समस्याओं को सुलझाने के रास्ते भी दिखाती है। राजेश जोशी वर्तमान मनुष्य के संत्रास और असुरक्षा के समसामयिक बोध को अपनी कविताओं में मार्मिक ढंग से व्यक्त करते हैं। राजेश जोशी की कविताएँ किसी भी प्रकार की हार को स्वीकार नहीं करती बल्कि पूरी मुस्तैदी के साथ उसका संघर्ष करती हुई प्रतीत होती हैं। राजेश जोशी की कविताओं के सन्दर्भ में डॉ. पंकज चतुर्वेदी लिखते हैं कि "**राजेश जोशी की कविता कई बार व्यंग्य, विद्रोह और विडम्बना-बोध को एक साथ साकार करती है**।"[2]

राजेश जोशी उन कवियों में से हैं जिन्होंने अपने पाठकों पर पूरा भरोसा किया है। वे पाठकों से यह उम्मीद करते हैं कि उनकी कविताओं को अपने समय में रखकर उसे एक ही अर्थ में न लें बल्कि विभिन्न अर्थों में समझने की कोशिश करें। इसलिए उनकी कविताएँ जितनी उनके जीवन अनुभव को चरितार्थ करती हैं उससे कहीं ज्यादा पाठकों के जीवनकी भाषा की कविताएँ हैं। यह उनकी कविताओं की महत्वपूर्ण विशिष्टता रही है। राजेश जोशी की कविताओं में 'अँधेरा' शब्द बार-बार आता है। यह अँधेरा ही है जो उसके बरक्स कविता लिखने की प्रेरणा साबित होती है। यह अँधेरा समाज में व्याप्त असमानताओं का हैं जिसका विद्रोह सीधे तरीके से न करके व्यंगात्मक भाषा में करते हैं -

"जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे, मारे जाएँगे

1. श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन हिन्दी कविता. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 2012, पृष्ठ – 216 |
2. चतुर्वेदी, पंकज. निराशा में भी सामर्थ्य. हरियाणा : आधार प्रकाशन, 2013, पृष्ठ – 119 |

कठघरे में खड़े कर दिए जाएँगे

जो विरोध में बोलेंगे

जो सच-सच बोलेंगे, मारे जाएँगे ।"[1]

समकालीन हिन्दी कवियों में लीलाधर जगूड़ी की कविताओं की भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि उनकी कविताओं में समय और परिस्थिति में व्यक्ति के तनाव को अपनी कविता के शब्दों में व्यक्त करते हैं। इसके अर्थ को समझना और कविता की पहचान करना कोई जटिल कार्य नहीं है। इनकी कविता में भाषा का प्रपंच नहीं है बल्कि आम बोलचाल की भाषा है जो आम जन की भाषा है। लीलाधर की काव्य भाषा घटना की स्थिति का जायजा भी करती है और उसका निदान भी तलाश करती है। समकालीन कविता की भाषा के सन्दर्भ में स्वयं लीलाधर जगूड़ी लिखते हैं कि "**समकालीन कवियों की कविता ने केवल भाषा की शक्ति को ही नया नहीं बनाया, बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी किया है। वहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं। आम आदमी तक पहुँचने वाला मुहावरा युवा कविता ने रचा। बल्कि यों कहें कि आज की कविता आम आदमी की कविता है।**"[2] चूँकि लीलाधर जगूड़ी भी समकालीन कवियों की श्रेणी में आते हैं तो उनके द्वारा समकालीन कविता की भाषा पर दिया गया वक्तव्य उनकी कविता की भाषा को भी इंगित करता है। इनकी कविताओं में जीवन की मार्मिकताओं को सीधी सरल भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान हुई है –

"**जब कोई आदमी नहीं मिले**

तब उसने खेतों में खड़े बिजूके गिरा दिए

---

1. kavitakosh.org/मारे जाएंगें/ राजेश जोशी / तारीख- 20.10.2017 |
2. श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन कविता का यथार्थ. चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1988, पृष्ठ – 158 |

काँटेदार तारों पर टंगे मिले हैं सारे बिजूके

आदमियों! सावधान

कल घरों के भीतर से उठनेवाली है कोई आँधी ।"[1]

समकालीन हिन्दी कवियों की काव्य-भाषा का अध्ययन करने और अशोक वाजपेयी की कविताओं का अध्ययन करने के पश्चात् लगता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् समकालीन कविता की भाषा में जो परिवर्तन हुए हैं, उसमें बहुत ही प्रखर और प्रभावी भाषा का प्रयोग किया गया है। समकालीन कविता की भाषा ने सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि विसंगतियों पर सीधा प्रहार पहुँचाया है। समकालीन हिन्दी कविता की भाषा वर्तमान मनुष्य से सीधा संवाद स्थापित करती है। अशोक वाजपेयी की काव्य-भाषा अपने कथ्य के अनुसार रूप ग्रहण करती। यह पूर्वर्ती कवियों की भाषा के समान या अलग भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं।

अशोक वाजपेयी की कविताओं में एक सजग आधुनिक भारतीय कवि की काव्य-भाषा कि छवियाँ प्रकट हुई हैं जिससे पाठकों को भाषा के अर्थ ग्रहण में सुलभता हुई है। अशोक वाजपेयी एक ऐसे समय के कवि हैं जहाँ पर प्रेम, दया, सहानुभूति, मानवीय मूल्य, प्रकृति और संस्कृति के प्रति लगाव कम होता जा रहा था तब कविता में उनके लिए जगह बनाना बहुत ही जोखिम भरा कार्य था, लेकिन अशोक वाजपेयी इस जोखिम को उठाने से कतराते नहीं है। अशोक वाजपेयी ने अपनी कविताओं में मनुष्य जीवन के लिए एक नई जमीन की तलाश की है। वे अपनी कविताओं में प्रेम, प्रकृति, समाज और मानवीय मूल्य आदि को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। वे अपनी कविताओं में जीवन की समग्रता

1. kavitakosh.org/ आँधी / लीलाधर जगूड़ी / तारीख- 10.10.2017 |

को शब्द देते हैं। वे मनुष्य के समय और समाज में व्याप्त जटिलताओं पर प्रश्न ही नहीं उठाते बल्कि उन प्रश्नों के जवाब भी अपनी कविता में ही तलाश करते हैं। लौटकर जब आऊँगा कविता में लिखते हैं कि-

"माँ, लौटकर जब आऊँगा

क्या लाऊँगा ?

यात्रा के बाद की थकान,

सूटकेस में घर-भर के लिए कपड़े

मिठाइयाँ, खिलौने।"[1]

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में प्रकृति, प्रेम, मनुष्य, पशु-पक्षी, माँ, पिता, दुधमुंही बच्ची से लेकर ठण्ड में बीड़ी पीते चौकीदार, ब्रह्माण्ड और अनंत, कवि, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि को अपनी कविताओं में स्थान देते हैं। इसलिए अशोक वाजपेयी की कविताएँ समय के साथ-साथ समय के पार भी जाती हैं। अशोक वाजपेयी कि कविता की जमीन समकालीन होते हुए भी आक्रोश की पर खड़ी नहीं होती है। उनकी कविता की भाषा में अतीत के प्रति लगाव दिखाई देता है। अपने अतीत से मुँह मोड़ लेने वाले कवि नहीं है। वे अपने अतीत से भी भाषा के अनुभव ग्रहण करते हैं। समकलीन कविता में प्रेम को अलक्षित कर दिया था तब अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में जीवन संरक्षरण के लिए जगह तलाशने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। सन् 1960 ई. में लिखी एक कविता 'अपनी आसन्नप्रसवा माँ के लिए' नाम से तीन गीत लिखे हैं। 'जन्मकथा' गीत में लिखते हैं कि –

"माँ, मेरी माँ,

1. त्रिपाठी, अरविन्द अशोक वाजपेयी की प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ - 18 |

तुम कितनी बार स्वयं से ही उग आती हो

और माँ, मेरी जन्मकथा कितनी ताज़ी

और अभी-अभी की है !"[1]

अशोक वाजपेयी की कविताओं में अन्य समकालीन कवियों के जैसे तीव्र स्वर दिखाई नहीं देते बल्कि वे अपनी कविताओं की भाषा में बेहद संजीदगी के साथ व्यक्त करते हैं। अशोक वाजपेयी अपनी प्रेम कविताओं में अन्य समकालीन कवियों के जैसा प्रकृति के साथ आदेशात्मक भाषा की शब्दावली का प्रयोग नहीं करते बल्कि प्रेम के लिए सूर्य, आकाश, हवा आदि से प्रार्थना करते हैं –

"**मैंने आकाश से प्रार्थना की :**

थोड़ा-सी अपनी नीलिमा,

अपनी असीमता मुझे दो

ताकि मै प्यार में

उन्हें मिला सकूँ ।"[2]

अशोक वाजपेयी की कविताओं में मुक्तिबोध की जैसी भयानक समय की चीख-पुकार नहीं है बल्कि उसी विपरीत परिस्थितियों में कुछ अच्छा कर सकने की उम्मीद है। इस सन्दर्भ में अमिता पाण्डेय लिखती हैं कि "**अशोक वाजपेयी अपनी कविता में बिना किसी शोर-शराबे के, बहुत ही सामान्य शब्दावली में, मनुष्य और उसके अन्तः करण को बचने का उद्यम करते हैं। वे कहीं भी भाषा का**

---

1. त्रिपाठी, अरविन्द अशोक वाजपेयी की प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2014, पृष्ठ – 18 |

2. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 51 |

चमत्कार नहीं करते।"[1] रघुवीर सहाय की जैसी अखबारी भाषा नहीं है। राजेश जोशी की जैसी विद्रोही और व्यंगात्मक भाषा नहीं है। लीलाधर जगूड़ी के जैसी बुलेट भाषा नहीं है बल्कि इन तमाम कवियों की काव्य भाषा से अलग एक व्यापक अर्थ ध्वनित करने वाली भाषा है। अशोक वाजपेयी की भाषा में शब्दों का आडम्बर नहीं है। वे अपनी कविताओं में गिने चुने ही शब्दों का प्रयोग बेहद संजीदगी के साथ करते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. धर्मवीर लिखते हैं कि 'मुझे लगता है कि कठचंदन गिनकर फल देता था, न कम, न ज्यादा। कविता में शब्द बिलकुल गिनती के होने चाहिए– न कम, न ज्यादा। अशोक वाजपेयी शब्द और भाषा के प्रति गहन आशक्ति के कवि हैं। शब्द उनके लिए जीवन है। वे शब्द के माध्यम से ही अपनी और अन्यों की भी दुनिया रचते हैं। अशोक वाजपेयी की कविता को मात्र अनुभव, स्मृति, कल्पना, आदि से निर्मित नहीं मानते बल्कि जब तक शब्दों के द्वारा विचार भाषा में प्रकट नहीं होते तब तक कविता का कोई अस्तित्व नहीं है। अशोक वाजपेयी कविता को मनुष्य का स्थायी प्रजातंत्र मानते हैं और वह प्रजातंत्र कविता में केवल भाषा से ही संभव है।

अशोक वाजपेयी की भाषा में विभिन्न भाषाओं के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है जो उनकी कविता में शब्द और भाषा पर अधिकार को पुष्ट करती है। अशोक वाजपेयी की काव्य भाषा के संदर्भ में डॉ.धर्मवीर लिखते हैं कि "**उनकी यह साहित्यिक भाषा लगभग हिन्दुस्तानी है जिसमें तत्समता पर कुछ ज्यादा जोर है चूँकि उनका सांस्कृतिक परिवेश द्विज संस्कृति का है इसलिए यह स्वाभाविक है। जिनका भाषाई परिवेश दूसरा है, वे हिन्दी से तत्सम के बजाय तद्भवता पर ज्यादा निर्भर करते हैं। फिर भी, एक बात सच है कि तत्समता बोझिल सत्यता नहीं है।**"[2] अशोक वाजपेयी निराशा और कुछ न हो पाने के कारण हार थककर बैठ जाने वालों में से नहीं हैं बल्कि

1. पाण्डेय, अमिता. समीक्षा पत्रिका. वर्ष-49.अंक-02. जुलाई-सितम्बर. इंदिरापुर उत्तरप्रदेश, 2016, पृष्ठ -15 |
2. धर्मवीर, अशोक बनाम वाजपेयी : अशोक वाजपेयी. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004, पृष्ठ – 13।

उसी निराशा के समय में या जब उम्मीद के सभी दरवाजे बंद हो गए हों तब उनकी कविता उन बंद हो गये दरवाजों पर खुल सकने की दस्तक अपनी कविताओं में देते हैं –

"आता है समय सभी को निचा दिखाते हुए जैसे वही नहीं बीतेगा,

बाकि सब हो जाएँगे गायब।

अपने निहत्थेपन में लाचार लोग प्रतीक्षा करते हैं

कि बेहतर दिन आएँगे।"[1]

अशोक वाजपेयी की कविता जीवन से हार मान लेने वाली कविता नहीं है बल्कि जीवन को एक नई शक्ति प्रदान करने की कविता है। जब मनुष्य में जीने की इच्छा मरने लगी हो तब उनकी कविता संजीवनी बूटी की तरह काम करती है। वे कहतें भी हैं कि ऐसे समय में जीने की इच्छा का जो आग्रह है, मैं उसका कवि हूँ। अर्थात् अशोक वाजपेयी की कविता मनुष्य के जीवन और जीवन की समस्याओं की पड़ताल कर उन्हें सुलझाने का सरल प्रयास करती हैं। इनकी कविताएँ निराशा में आशाओं के द्वीप की तरह चमकती हैं और यह सब होना भाषा में ही संभव है जिसे अशोक वाजपेयी बड़ी शिद्दत के साथ करते हैं। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में अन्य समकालीन कवियों से हटकर जिन मुद्दों को और समस्याओं को उठाते हैं, उनमें कला और साहित्य की जनतांत्रिकता, संस्कृति का पुनर्स्थापन, समाज की अव्यवस्थाएँ, प्रकृति से अलगाव, बढ़ती हुई मूल्यहीनता आदि हैं –

"कितना दूभर है

शब्दों के घमासान में से

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 94 |

ऐसे शब्द खोज पना

जो आधार में जाकर

विलीन हो जाने पर आपत्ति न करें।"[1]

अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में कवि-लेखक और संगीत-कलाकार को समुचित सम्मान दिलाने की कोशिश करते रहे हैं जिसे वे अपने जीवन के संघर्ष का महत्वपूर्ण पहलू मानते हैं। यह सब उनके अन्य समकालीनों में खोजना निरर्थक ही होगा। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं के बारे में कन्हैयालाल नंदन से बात करते हुए कहते हैं कि "**मैंने अपने लिए जिस तरह का कविता-संसार बनाने का इरादा किया, उसमें इन सब के लिए जगह नहीं थी। इसलिए भी नहीं थी की हिन्दी कविता का जो चालू मुहावरा है- कुछ चीजें छूट गई, मैं एक तरह से उन छूट गई चीजों का कवि हूँ। प्रेम छूट गया, कोमलता छूटगई, प्रकृति छूट गई-इनसे जो हमारा एक गहरा सम्बन्ध था, वो छूट गया।**"[2] समकालीन हिन्दी कविता ने जिन चीजों को अलक्षित कर दिया है जैसे- समाज, संस्कृति, प्रकृति, प्रेम, करुणा, मानवीय मूल्य आदि। उन तमाम अलक्षित चीजों को अशोक वाजपेयी अपनी कविता का विषय बनाते हैं। अशोक वाजपेयी कविता लिखना एक नैतिक कर्म भी मानते हैं। अशोक वाजपेयी भाषा के नव निर्मित शब्दों का तो प्रयोग करते ही हैं लेकिन अपनी भषा को बचाने-सहेजने का भी महत्वपूर्ण उद्यम रचते हैं। वे अपनी भाषा से बल्कि अपने अतीत या की पुराने शब्दों को अपनी कविता में प्रयोग करते जिससे कि भाषा में जीवन्तता बनी रहे और बोझिलता न हो। वे अपनी कविता में प्रयुक्त शब्द किसी भाषा से नहीं बल्कि कालकोष से उठाते हैं। इस सन्दर्भ में 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविता 'इस तरह लिखता हूँ' कविता में लिखते हैं कि –

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 104 |
2. वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, वर्ष 1998, पृष्ठ – 72 |

“इस तरह लिखता हूँ

जैसे भाषा से नहीं,

कालकोष से उठाता हूँ शब्द।”[1]

3. 2 काव्य-संग्रह में भाषा सम्बन्धी प्रयोग :

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य के दो पक्ष होते हैं – भावपक्ष और कलापक्ष। भावपक्ष के अंतर्गत कविता में निहित उसकी विषय वस्तु और भावाभिव्यक्ति पर ही विचार किया जाता है तथा कलापक्ष के अंतर्गत कविता की भाषा, प्रतीक, बिम्ब, अलंकर, छंद आदि का अध्ययन किया जाता है। साहित्य शब्दों से निर्मित भाषा में मनुष्य जीवन की अभिव्यक्ति का सबसे सुन्दर साधन है। साहित्य में वही लिखा जाता है जो समाज में घटित होता रहता है। साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात विचारों, भावों को भाषा में अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। भाषा हमारे भावों को अभिव्यक्त करने का सर्वोच्च साधन है। भाषा में रचा गया साहित्य हमारा जीवन होता है। साहित्य से विलग रहकर हम हम वास्तविक वस्तुस्थिति से वाकिफ़ नहीं हो सकते हैं। साहित्य मनुष्य और समाज को हमेशा नया मार्ग प्रशस्त करता है। साहित्य मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा पोषक तत्त्व है। काव्य में भावों, विचारों, रस और अलंकार आदि को शब्द के माध्यम से प्रकट किया जाता है। शब्द। शब्द और शब्द से मिलकर बनती है एक भाषा। भारतीय साहित्य में कविता की बुनियादी विशेषता का सम्बन्ध कला से बताते हुए योगेन्द्र प्रताप सिंह लिखते हैं कि “**उसकी दृष्टि में संगीत, चित्र, मूर्ति एवं स्थापत्य कलाएँ अपनी वस्तु हैं जिनके लिए कतिपय बुनियादी आधारभूत तत्त्व हैं, जैसे- चित्र के स्थापत्य (ढाँचे) के लिए**

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 14।

'रेखाएँ', संगीत के लिए स्वरारोह, स्थापत्य के लिए दिशाओं का आकलन। ठीक उसी प्रकार, 'शब्द' के ढाँचे से कविता बनती है। इस प्रकार कविता की बुनियादी मान्यता कला से सम्बद्ध है। भारतीय कविता की यह पहली विशेषता है।"[1]

भाषा भावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करने का सबसे सरल और सहज साधन है। भाषा के माध्यम से ही कोई रचनाकार अपने साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। कोई भी कवि जब रचना करता है तो उसके भावों की अभिव्यक्ति भाषा में ही संभव हो पाती है क्योंकि कवि अपना कवि-कर्म करते हुए भाषा से सहज ही सम्बद्ध हो जाता है। भाषा का निर्माण हम स्वयं करते हैं जिसका मूल 'शब्द' होता है। शब्द के अभाव में भाषा की कल्पना करना असंभव है क्योंकि यह शब्द ही है जो हमारे भावों और विचारों को एक भाषा में रचने का अवसर प्रदान करता है। शब्द के अभाव में सबकुछ शून्य रह जाता है। इसलिए शब्द को 'ब्रह्म' स्वरूप माना जाता है। शब्द एक ऐसा अकाट्य सत्य है जो हमारे होने को परिभाषित करता है। ये शब्द ही हैं जो हमारे होने का हमें बार-बार एहसास कराते हैं।

अशोक वाजपेयी के काव्य संसार का शब्द-भंडार बहुत ही व्यापक है। अशोक वाजपेयी कविता में अनुभव और भाषा में शब्द को महत्व देते हुए लिखते हैं कि 'कविता अंततः अंतर्ध्वनियों, स्मृतियों से भरी भाषा है, वैसी भाषा कविता में अनायास नहीं आ सकती, उसके लिए कल्पना के साथ-साथ कौशल चाहिए। भाषा कवि के लिए निरा माध्यम नहीं है, वह अनुभव भी है। कविता दृष्टि, विचार या अनुभव भर से नहीं, शब्द से भी लिखी जाती है।' अशोक वाजपेयी भाषा के मामले में बहुत ही सजग और सिद्धहस्त कवि हैं। अशोक वाजपेयी भाषा को एक सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में मानते हैं। विनय कुमार से साक्षात्कार में बात करते हुए कहते हैं कि कवि भाषा के प्रति जिम्मेदार होकर ही सामाजिक जिम्मेदारी निभा सकता है।' अशोक वाजपेयी भाषा को एक संपदा के रूप में भी स्वीकार करते हैं-

---

1. सिंह, योगेन्द्र प्रताप. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका. इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2007, पृष्ठ – 09 |

"शब्दों को

कौन सी हँसी मसलकर भाग जाति है

विस्मृति कि ओर ?"[1]

अशोक वाजपेयी ने अपने कविता लेखन के प्रारंभ से ही शब्दों पर जोर दिया है। वे अपनी कविता में किसी चालू मुहावरेदार भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं बल्कि अपनी कविताओं में भाषा की एक नई जमीन को तलाश किया है। अशोक वाजपेयी की कविता में तत्सम, तद्भव के साथ-साथ क्षेत्रीय एवं देशज व विदेश भाषा के शब्दों का अथाह भंडार है –

"पशुओं और पक्षियों की

तितलियों और कीड़े-मकोड़ों की

वृक्षों, पत्तियों और फूलों की

बादलों, ऋतुओं, हवा की

नदियों, पर्वतों, पठारों और शिखरों की

सागरों, झरनों, जल-प्रपातों की भी।"[2]

अशोक वाजपेयी की कविताओं की भाषा के सन्दर्भ में मदन सोनी टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि **"अशोक वाजपेयी की कविताएँ अकेली ऐसी कविताएँ हैं, जिनमें भाषा इतनी विशिष्ट और**

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 66।

2. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 73।

प्रभावी है ।"[1] अशोक वाजपेयी की कविताओं में तत्सम और तद्भव शब्दों के समावेश से यह नहीं है कि भाषा में कोई क्लिष्टता आई हो बल्कि इन शब्दों के प्रयोग से भाषा में एक नया निखार आया है जो समकालीन हिन्दी कवियों की भाषा के आधार पर उन्हें अलग भी करता है –

"पृथ्वी बसुन्धरा है

भग्न हृदयों, पापों,

विलाप और आँसुओं की :

हम उसे

भंगुरता, पवित्रता और किलक का द्वीप

बनाना चाहते हैं ।"[2]

यहाँ पर उल्लेखित कविता में पृथ्वी, बसुन्धरा, पाप, भंगुरता, पवित्रता द्वीप आदि तत्सम व तद्भव शब्दों का प्रयोग हुआ है । अशोक वाजपेयी की कविताओं में काव्य-प्रतिमाओं का विशद विस्तार है । इन काव्य-प्रतिमाओं में रूप-रंग, प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य की विविधताएँ तो हैं ही साथ ही कविता का ध्वन्यार्थ, शब्द-प्रेरणाएँ और उनकी अर्थवत्ता व अभिव्यक्ति का विपुल भंडार है । अशोक वाजपेयी का यह सामर्थ्य शब्द और कविता में भाषा के प्रति उनकी गहन आस्था का प्रमाण है –

"इस मुकाम पर आकर कैसे कहूँ

कि अपने शब्द वापस लेता हूँ :

---

1. पचौरी, सुधीश. अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, वर्ष-1999, पृष्ठ – 296 |

2. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 89 |

यह कह सकने का विनय तो है

पर अब तक वह साहस नहीं

जो अंत के नियराने पर हो पाता है।"[1]

अशोक वाजपेयी के 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में विभिन्न तत्सम, तद्भव के साथ देशज व विदेशी शब्दों का प्रयोग मिलता है जो कविता की भाषिक संरचना को आकर्षक एवं पुष्ट बनाता है। 'टोकनी' एक देशज शब्द है जिसका कविता में प्रयोग करके कविता के अर्थ को सहजता में प्रकट किया गया हैं जिससे उनकी कविता की अर्थवत्ता और अधिक बढ़ जाती है। 'छाता' कविता में 'दुबका' शब्द कविता की भाषा में देशीयता का मिश्रण करता है। 'जूता' शब्द और वास्विक जीवन में भी जूता पर कोई ध्यान नहीं देता बल्कि अशोक वाजपेयी इन छोटी-छोटी वस्तुओं के शब्दों का प्रयोग कर बड़ी कविता रच जाते हैं। इस तरह की कविता लिखने का हुनर अन्य समकालीनों कवियों में देख पाना दुर्लभ है। वे जूता शब्द का प्रयोग साधारण भाषा में मानवीय मूल्यों की पड़ताल करने के लिए करते हैं। अशोक वाजपेयी की कविताएँ भाषा और भाषा में लगातार कम पड़ते जा रहे शब्दों की तलाश करती हैं। समय की सचाई भाषा में अब समा नहीं पाती है। वे अपनी कविता में लिखते हैं कि -

"सच्चाई, शब्दों से, कम-से-कम मेरे शब्दों से

दूर जा चुकी है

और अब तो यह मानना तक मुश्किल है

कि वह कभी इन शब्दों में भी थी।"[1]

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013,, पृष्ठ – 32 |

अशोक वाजपेयी की कविताओं में शब्दों और भाषा के निरंतर सतही और धूमिल होते जाने का खेद दृष्टिगोचर होता है। वे अपनी कविताओं के मार्फ़त वर्तमान समय के समकालीन मनुष्य में शब्द और भाषा के प्रति बढ़ी हुई अनास्था के प्रति चिंतित नजर आते हैं। अशोक वाजपेयी शब्द और भाषा को जीवन मानते हैं। भाषा के अभाव में कविता और जीवन का कोई औचित्य नहीं रह जाता। अशोक वाजपेयी लगातार शब्दों के कमतर होने पर भी उन्होंने अपना सामर्थ्य नहीं खोया है। शब्द और भाषा के प्रति आज भी वैसी ही आस्था है जो पहले कविता संग्रह 'शहर अब भी सम्भावना है' के समय में थी। बल्कि कहना होगा कि समय के इस लम्बे अंतराल में विभिन्न कविता संग्रह प्रकशित हो चुके हैं जिसमें उनकी कविताओं में शब्द और भाषा के प्रति अधिक प्रगाढ़ता दृष्टिगोचर हुई है। वे वर्तमान भाषा पर चिंता जाहिर करते हुए कविता में लिखते हैं कि -

"शब्दों के प्रासाद,

लयों के स्थापत्य,

अनुगूँजों का सुघर विन्यास,

क्या ऐसे धूमिल हो जाते हैं

कि उन्हें बूढी आँखों से देख पाना संभव नहीं होता ?"[2]

अशोक वाजपेयी की कविताओं में क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का भी प्रभाव देखने को मिलता है जो उनकी कविता को एक विशिष्ट अर्थ प्रदान करती है। क्षेत्रीय बोली के शब्दों में हिलगे, टटोलना, नियराना, पियराना, अचकचाया, दिनदहाड़े आदि। कविता में दृष्टव्य है –

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 33 |

2 वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 34 |

"इन सबके बीच अगर कुछ हिलगे शब्द भी बचते हैं

तो उन्हें टटोलने के लिए

हाथ उत्सुक नहीं होते।"[1]

इस प्रकार के क्षेत्रीय भाषा के शब्दों के प्रयोग से कविता में एक अलग प्रकार की विशिष्टता कायम करने में अशोक वाजपेयी सफल हुए हैं। अशोक वाजपेयी की कविताओं में देशज शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। देशज शब्दों के प्रयोग से कविता समाज के निकट पहुँचती है और इसका भाषा और समाज का सम्बन्ध भी मजबूत होता है। कविता की भाषा की पहचान भावबोध के परस्पर सम्बन्ध से ही हो सकती है। कविता की सही पहचान कविता की भाषा और उसके भाव-बोध के परस्पर सम्बन्ध की जाँच से ही की जा सकती है। अशोक वाजपेयी की कविता किसी एक देश या समाज की कविता नहीं है बल्कि उनकी कविता में समस्त ब्रह्माण्ड समाहित है जिसका प्रमाण कविता में प्रयुक्त शब्द हैं। वे अपनी कविता में थोड़े से शब्दों से काम नहीं चलाते बल्कि शब्दों का विपुल भण्डार है जिनमें तत्सम तद्भव के साथ विदेशी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग देखने को मिलता है –

"पृथ्वी का उत्साह,

आकाश का मौन सब गुँथे हों

जिसमें ब्रम्हांड का शून्य गूँजता हो।"[2]

किसी भी शब्दों से अशोक वाजपेयी को शब्दों की शक्ति में विश्वास है इसलिए वे उन शब्दों का प्रयोग करते हैं जो समाज में सम्प्रेषणीय हैं। विदेशी भाषा के शब्दों में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग 'कहीं

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ, पृष्ठ – 35।
2. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 20।

कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की विभिन्न कविताओं में भी दृष्टिगत हुआ है । विदेशी शब्दों में रेस्तराँ,ड्राइवर, सूटकेस आदि शब्दों के प्रयोग से कविता में स्पष्टता आई है। यह स्पष्टता इस अर्थ में है कि अब अधिकांश लोग वाहन चलानेवाले को अब कोई 'चालक' नहीं कहता बल्कि 'ड्राइवर' कहते हैं –

"किसी रेस्तराँ में अकेली बैठी लड़की की हँसी से,

यात्रियों की प्रतीक्षा में मनमारे बैठे

बस के ड्राइवर की उदासी से;"[1]

..

अब तो

भरी-पूरी ट्रेन रूकती है स्टेशन पर

लेकिन कोई नहीं उतरता।"[2]

अन्य विदेशी भाषाओं में अरबी फारसी आदि के भी शब्द मिलते हैं जिनमें दरअसल, आख़िरकार, अलविदा, गुनाह, पशोपेश, मुश्किल, तमाशा, मुमकिन, मुकाम, फ़र्क, ख्याल, आदि संप्रेष्य शब्दों के प्रयोग ने कविता को गतिशीलता प्रदान की है -

"कि दरअसल आख़िरकार हमारे पास कहने को

कुछ नहीं होता : न अलविदा, न शुभकामना, न प्रार्थना।"[3]

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 52 |
2. वही, पृष्ठ - 63 |
3. वही, पृष्ठ – 21 |

अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह ‘कहीं कोई दरवाजा’ की कविताओं में प्रयुक्त किए गये शब्द किसी एक भाषा में ही संकुचित नहीं हैं बल्कि विभिन्न भाषाओं के शब्द संयोजन से एक सुन्दर भाषा का निर्माण करते हैं। यह विभिन्न भाषाओं के शब्दों पर अपनी पकड़ रखना कवि के भाषाई संसार को व्यापक एवं पुष्ट करती है। अशोक वाजपेयी की काव्य-भाषा एक सिद्धहस्त कवि की भाषा है। इनकी कविताओं विभिन्न प्रकार के शब्दों का समाहार किया गया है। जिससे भाषा में बोझिलता की बजाय ताजगी आई है। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में सहज भावों की अभिव्यंजना के कवि हैं। इनकी काव्य-भाषा में सरल एवं सम्प्रेषणीय शब्दों का प्रयोग किया गया है। अशोक वाजपेयी की काव्य-भाषा साहित्य और समाज के संबंध को गहरे अर्थों में व्यक्त करती है। अशोक वाजपेयी की कविता कि भाषा में सहजता एवं सम्प्रेषणीय होने से समाज से जुडी हुई कविता है अर्थात जीवन में विश्वाश की कविता है।

3. 3 काव्य-संग्रह में शिल्पगत प्रयोग :

अशोक वाजपेयी के लिए जिस प्रकार से कविता के लिए कोई विषय वर्जित नहीं है उसी प्रकार उनकी भाषा में विविध प्रकार के शब्दों का साहसिक प्रयोग देखने को मिलता है। वे भाषा के प्रति बहुत ही सजग व्यक्ति हैं क्योंकि शब्द के प्रति आशक्त कवि हैं। अशोक वाजपेयी कविता में शब्द की महत्ता को व्यक्त करने वाले कवि हैं। अशोक वाजपेयी समकालीन कवियों की भाँति सतही भाषा का प्रयोग नहीं करते बल्कि सुन्दर सहज और सिद्धहस्त भाषा का प्रयोग करते हैं। अशोक वाजपेयी की कविताओं में तत्सम तद्भव के साथ देशज, विदेशी और क्षेत्रीय बोलियों के शव्दों का भी प्रयोग देखा जा गया है। अशोक वाजपेयी शब्द को मनुष्य का महानतम अविष्कार मानते हैं, साथ ही शब्द को अकाट्य मानवीय उपस्थिति भी स्वीकार करते हैं। अशोक वाजपेयी की भाषा के सन्दर्भ में डॉ. धर्मवीर लिखते हैं कि

"उन्होंने कविता में संस्कृत के संधि वाले लम्बे शब्दों का प्रयोग नहीं किया। उनके यहाँ खड़ीबोली की विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का मिजाज पूरी तरह सुरक्षित है और सजता है।"[1]

अशोक वाजपेयी ने अपने काव्य-संसार का व्यापक विस्तार करके समकालीन हिन्दी कविता की भाषा शक्ति को भी व्यापक विस्तार दिया है। संवेदना और शिल्प के माध्यम से शब्द का चयन व संयोजन से भाषा पर अपना अधिकार रखते हैं। भाषा पर अधिकार होने से आशय महज शब्द शक्ति और व्याकरणिक ज्ञान से नहीं बल्कि उसका सही अर्थों में जहाँ जिस शब्द की जरूरत होती है, उसे अपनी कविता में फिट बैठाने का कार्य अशोक वाजपेयी बहुत ही सुन्दर ढंग से करते हैं। यह भाषा की महत्वपूर्ण विशेषता है जिससे अशोक वाजपेयी की काव्य-भाषा की शक्ति के साथ समकालीन हिन्दी कविता की भाषा में भी वृद्धि हुई है।

3.3.1 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में 'प्रतीक' :

सामान्यतः प्रतीक शब्द का अर्थ 'संकेत' 'चिन्ह' या 'प्रतिरूप' से लिया जाता है। प्रतीक को अंग्रेजी में 'सिम्बल' (SYMBOL) कहा जाता है जिसका अर्थ विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु से लिया जाता है। साहित्य में प्रतीक शब्द का अर्थ उस गोचर वस्तु के लिए प्रयुक्त किया जाता जो किसी अगोचर अथवा अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान करती है। किसी अदृश्य या अप्रस्तुत वस्तु या भाव को व्यक्त करने के लिए किसी दृश्य वस्तु का प्रस्तुतिकरण करना वह दृश्य वस्तु, अदृश्य वस्तु का 'प्रतीक' होगा। 'हिन्दी शब्दकोश' में डॉ.हरदेव बाहरी 'प्रतीक' का अर्थ "**वह अभिव्यंजनात्मक प्रणाली जिसके अनुसार प्रतीकों के आधार पर भावों एवं विषयों आदि का ज्ञान कराया जा सके**"[2] मानते हैं। 'आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द' में बच्चन सिंह प्रतीक शब्द को व्याख्यायित करते हुए

---

1. धर्मवीर, अशोक बनाम वाजपेयी : अशोक वाजपेयी. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, वर्ष 2004, पृष्ठ – 13।
2. बाहरी, हरदेव. हिंदी शब्दकोश. नई दिल्ली : राजपाल एण्ड संस, वर्ष 2016, पृष्ठ – 557।

लिखते हैं कि "**'प्रतीक' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में हुआ है। उससे अर्थ को ग्रहण करते हुए बालगंगाधर तिलक ने इसका अर्थापन अपने ढंग से किया है- 'प्रतीक' (प्रति: + इक) का धात्वर्थ है- 'प्रति:' का अर्थ 'अपनी ओर', 'इक' झुका हुआ। जब किसी वस्तु का कोई एक भाग पहले गोचर हो; और फिर आगे वस्तु का ज्ञान हो, तब उसको 'प्रतीक' कहते हैं।**"[1]

प्रतीक को परिभाषित करते हुए सत्यदेव मिश्र लिखते हैं कि "**साहित्य में अमूर्त अदृश्य अश्रव्य एवं अप्रस्तुत विषय का प्रतिनिधित्व मूर्त, दृश्य, श्रव्य एवं प्रस्तुत विषय द्वारा किया जाना ही प्रतीक-पद्धति का प्रयोग कहलायेगा।**"[2] बच्चन सिंह आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रतीक के सन्दर्भ में मत प्रकट करते ही कहते हैं कि "**आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने प्रतीक को सन् 1886 ई. में फ्रांस में हुए 'प्रतीकवादी' आन्दोलन से जुड़ा हुआ माना है।**"[3]

अशोक वाजपेयी का काव्य संसार बहुत ही व्यापक है। अशोक वाजपेयी की कविताओं के विविध विषयों के अनुक्रम में विविध प्रतीकों का भी प्रयोग दृष्टव्य है। क्योंकि अशोक वाजपेयी की कविताएँ विविधताओं से परिपूर्ण हैं। वे अपनी कविताओं में किसी एक विचारधारा के वशीभूत होकर कविता नहीं लिखते बल्कि मनुष्य के समग्र जीवन को अपनी कविता का विषय बनाते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग करते हैं। काव्य-संग्रह की पहली कविता में 'टोकनी' शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका सामान्य अर्थ तो पात्र से है लेकिन उसी 'टोकनी' शब्द का प्रतीकात्मक अर्थ में देखा जाये तो उसका अर्थ मनुष्य के 'हृदय' से लिया गया हैं जिसमें दुःख रखा जाता है। दुःख रखने की जगह हृदय है इसलिए टोकनी शब्द को प्रतीकात्मक अर्थ में समझना सार्थक होगा।

---

1. सिंह, बच्चन. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, वर्ष 2001, पृष्ठ - 69 |
2. मिश्र, सत्यदेव. पाश्चात्य काव्यशास्त्र अधुनातन सन्दर्भ. इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2016, पृष्ठ - 349 |
3. सिंह, बच्चन. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, वर्ष 2001, पृष्ठ - 69 |

'छाता' कविता में 'छाता' शब्द को समाज का प्रतीक माना है। अर्थात जिस तरह छाता हमें बारिश और तेज धूप से बचाता है उसी प्रकार समाज भी हमारी समस्याओं को सुलझाता है। 'पुकारना' शब्द के द्वारा अशोक वाजपेयी किसी अदृश्य शक्ति को संबोधित करते हुए कहते हैं कि 'वह मुझे पुकारता है' यहाँ पर दृष्टव्य है कि 'वह' जो है वह किसी अदृश्य शक्ति का प्रतीक है जिसे अशोक वाजपेयी अपनी कविता में प्रतीकात्मक ढंग से संबोधित करते हैं जिससे कविता का शिल्प और अधिक प्रभावी हो जाता है –

"वह मुझे पुकारता

पर उसकी प्यास, उसकी दस्तक

आवाज में सुनाई देती है।"[1]

'दरवाजा' शब्द अशोक वाजपेयी का काफी पुराना और प्रिय शब्द है जिसका प्रयोग लगभग सभी रचनाओं में देखने को मिलता है। 'दरवाजा' शब्द का प्रयोग वे कविता में आवश्यकतानुसार प्रयोग करते हैं लेकिन 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य संग्रह की कविताओं में 'दरवाजा' को 'समाज' का प्रतीक माना है। समाज के सन्दर्भ में प्रयोग करने का आशय समाज के दरवाजे से है अर्थात् समाज में रहने वाले लोगों की मानसिकता में हुए परिवर्तन से सामाजिकता और मानवीयता आदि को लोग त्यागते जा रहे हैं –

"दरवाजा देख पाता है

कि हम उसमें से बाहर की दुनिया

इतनी बार निरखते हैं।"[2]

सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में 'नदी' और 'मिट्टी का बरतन' संस्कृति का प्रतीक माना है जो हमारे समाज में संस्कृति एक नदी की धारा की तरह प्रवाहित होती रहती है। मिट्टी के बरतनों का प्रयोग करना बंद कर दिया है। मिट्टी के बरतनों का धीरे-धीरे कमतर होते जाना संस्कृति के बिलुप्त होने का प्रतीकात्मक अर्थ प्रदान करता है। अशोक वाजपेयी इस संग्रह की कविताओं में 'पड़ोस' एक व्यापक अर्थ प्रकट करता है जिसका प्रतीकात्मक अर्थ आस-पास के समाजिक वातावरण को माना गया है। विभिन्न अर्थों में देखा जाये तो जब परिवार की बात करते हैं तो बाजू में रहने वाले से, जब समाज की बात करते हैं, तब

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 17।
2. वही, पृष्ठ – 83।

दूसरे समाज से, जब देश की बात करें तब आपस के पडोसी देशों से, जब सूर्य की बात करें तो तारों से आदि अर्थों में प्रयोग करते हैं –

"घर का कोई पड़ोस नहीं है,

जो था वह बेघरबार हो चुका

इस छन्दहीन पल में।"[1]

कविता में प्रयुक्त बालटी शब्द हमारे अंतःकरण का प्रतीक है और पानी हमारी संवेदनाओं का प्रतीक है जो पानी की तरह धीरे-धीरे नष्ट और मरती जा रहीं हैं। 'काल का हाथ' भयानक समय का प्रतीक है। समय तेजी से बीत रहा है जिसमें अपनों के जाने की खबर हर रोज मिलती है। समय मृत्यु का प्रतीक है। नदियों की अतल गहराई से 'चट्टानों का उभर आना' नदियों के सूखने का प्रतीक है। पानी के कम होते जाने को नदियों से उभरी हुई चट्टानों से प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त किया है। 'प्रवाहित जल' को हमारी भारतीय संस्कृति का प्रतीक माना है जिस प्रकार एक नदी हमेशा प्रवाहमान रहती है उसी की मानिंद हमारी भारतीय संस्कृति लगातार प्रवाहमान बनी हुई है। जिस प्रकार जलधारा में विभिन्न गंदे नाले भी मिलकर पवित्र नदी बन जाते हैं, उसी प्रकार हमारी संस्कृति में दुर्गुण व्यक्ति के कर्मों को माफ़ कर उसे जीवन जीने का सही मार्ग प्रशस्त करती है।

'अँधेरा' शब्द वर्तमान में बड़े हुए अमानवीयता, असामाजिकता, हत्या, लूटमार से बढ़ते हुए अँधेरों का प्रतीक है। पर्वतों से शिकायत करना उनकी उदासीन होते जाने का प्रतीक है। भूलना हमारी याददाश्त का कम होते जाने का प्रतीक है। वृतांतों में याद रखना साहित्य में स्थान देने का प्रतीक है आदि प्रतीकों का प्रयोग दृष्टिगोचर हुआ है –

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 26 ।

"कुछ अँधेरा, कुछ पत्तियां, कुछ थकान

मुरझाए फूलों की तरह लटके हैं।

बिना ठिठके सब कुछ चल रहा है।"[1]

3.3.2 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में 'बिम्ब':

'बिम्ब' अंग्रेजी के 'इमेज' (IMAGE) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। मनोविज्ञान में 'बिम्ब' इन्द्रियों द्वारा ग्रहीत अनुभवों का प्रतिबिम्ब माना गया है। साहित्य में बिम्ब को 'अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निर्मिति' माना है। हिम्दी शब्दकोश में डॉ. हरदेव बाहरी ने बिम्ब को 'व्यंजन शक्ति से निकलनेवाला अर्थ' माना है। हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में बिम्ब शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सन् 1915 ई. में लिखित निबंध 'भाव या मनोविकार' में 'बिम्ब' को परिभाषित करते हैं कि "**बिम्ब-योजना विभाव के अंतर्गत होती है, चित्रण उसका मुख्य धर्म है। इसकी दूसरी विशेषता है संश्लिष्ट रूपविधान। बिम्ब व्यक्ति या विशेष का होगा, सामान्य या जाति का नहीं।**"[2] पश्चमी साहित्य में बिम्ब शब्द को 'बिम्बवाद'(IMAGISM) आन्दोलन के नाम से सर्वप्रथम प्रयोग एजरा पाउन्ड ने सन् 1912 ई. में किया था। इस आन्दोलन के उद्भव के मूल में ह्यूम की स्वच्छंदतावाद विरोधी प्रवृत्ति का गहन प्रभाव था। वस्तुतः बिम्बवादियों का मुख्य उद्देश्य कविता को एक नवीन दिशा प्रदान करना था।

काव्य में बिम्ब रूप, रंग, गंध, स्पर्श और स्वाद आदि का इन्द्रियों द्वारा अनुभव से बनता है। काव्य में बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया को आचार्य रामचंद्र शुक्ल रूप-विधान कहते हैं और उन रूप-विधानों

---

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 26 |
2. सिंह, बच्चन. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2001, पृष्ठ – 77 |

को तीन भागों में विभाजित किया है, जिनमें प्रत्यक्ष रूप-विधान, स्मृति रूप-विधान और कल्पित रूप-विधान। कल्पित रूप-विधान को ही काव्य-प्रक्रिया के निर्माण में महत्वपूर्ण माना गया है। बिम्ब को परिभाषित करते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं कि "**किसी भाव, विचार, वस्तु घटना आदि का इन्द्रिय संवेद्य काल्पनिक शब्द-बद्ध संमूर्तन काव्य बिम्ब हैं।**"[1]

सामान्यत: देखा जाये तो मनुष्य वास्तव में किसी घटना तथा वस्तु को बिम्ब के रूप में ही ग्रहण करता है इसलिए 'बिम्ब' को कविता का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। बिम्ब भाषा सम्प्रेषण का ऐसा माध्यम है जिससे कवि रचना करते हुए अनुभूतियों के आधार पर भाषा में ही उसका दृश्य खीचते जाते हैं। कविता में बिम्बों के प्रयोग से सजीवता आती है। बिम्ब इंद्रिय ग्राही होते हैं। कविता में बिम्बों का सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क में बनने वाले भाषा चित्रों से होता है। 'भारतीय काव्य शास्त्र के नये क्षितिज' नामक पुस्तक में राममूर्ति त्रिपाठी 'बिम्ब' के सन्दर्भ में भारतीय काव्यशास्त्रीय मान्यता को दृष्टिगत रखते हुए लिखते हैं कि 'भारतीय काव्यशास्त्र में 'बिम्ब' शब्द का प्रयोग दृष्टान्त अलंकार के सन्दर्भ में अवश्य है, पर वह उक्त आशय को गर्भीकृत नहीं करता। यहाँ 'बिम्ब' शब्द का अर्थ है - कारयित्री अथवा भावयित्री प्रतिभापटल पर 'अर्थ' का अपने 'विशेषों' से संवलित होकर प्रत्यक्षायमाण रूप में उभर आना है।

कविता में बिम्ब को वस्तु और रूप से सम्बंध जोड़ते हुए उसे मूर्त तथा ग्राह्य बताते हुए नामवर सिंह लिखते हैं कि "**कविता में मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब-विधान पर। बिम्ब-विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय-वस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी। विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है ; रूप को संक्षिप्त और दीप्त।**"[2] नामवर सिंह बिम्ब को कविता का पर्याय नहीं मानते हैं बल्कि बिम्ब के बिना भी कविता लिखना संभव स्वीकारते हैं। बिना बिम्ब की

1. सिंह, बच्चन. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, वर्ष 2001, पृष्ठ – 77।
2. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ – 117।

कविताओं को बिम्ब युक्त से कम नहीं मानते हुए लिखते हैं कि "**कविता में बिम्ब-रचना सदैव वास्तविकता को मूर्त ही नहीं करती, कभी-कभी वह वास्तविकता का अमूर्तन भी करती है।**"[1] केदार नाथ सिंह के शब्दों में कहा जाये तो एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत बिम्बों के आधार पर ही की जा सकती है। उसकी विशिष्टता और उसकी आधुनिकता सबसे अधिक उसके बिम्बों से ही व्यक्त होती है अर्थात् बिम्ब आधुनिकता की पहचान है और जो आधुनिक कवि होगा वह अपनी कविता में अधिक बिम्बों का प्रयोग करेगा। कवि की विशिष्टता और आधुनिकता उसके द्वारा प्रयुक्त किये गए बिम्बों से मापी जाएगी।

अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रतीक और बिम्बों का तो अथाह भण्डार है। वे अपनी कविताओं में रूढ़िवादी या परम्परावादी बिम्बों का प्रयोग नहीं करते हैं बल्कि नये बिम्बों का विधान करते हैं। 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में विभिन्न बिम्बों को देखा जा सकता है। 'धूप और तेज हवा' मनुष्य के समक्ष आयीं हुई विपरीत परिस्थितियाँ हैं। 'जूतों में फफूँद लगना' हमारी स्मृतियों में क्षीणता से है। 'कालकोश से शब्द उठाना' अतीत या अपनी प्राचीनतम संस्कृत भाषा से शब्दों का कविता में चयन करना। 'पत्ती का बुलाना' प्रकृति के प्रति लगाव का बिम्ब है –

"एक पत्ती बुलाती है

समूचे जंगल को...

उसकी वृक्षराजि, हिंस्त्र पशुओं,

चहचहाते पक्षियों।"[2]

---

1. सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ – 131।

2. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 15।

अदृश्य शक्ति का पुकारना दार्शनिक बिम्ब है। 'वृक्षों से बात करना', 'पर्वत से शिकायत करना', 'झरनों के किनारे शोकगीत गाना', 'मौन में शब्दों से पक्षियों को न्योता देना', 'कविता की दहलीज से पुकारना' अशोक वाजपेयी की कविता में प्रयुक्त नवीन बिम्ब हैं-

"मेरी परवाह किए बिना

पक्षी करते रहे अपना संवाद,

उन्हें अपने मौन में

शब्दों के घोंसले में

न्योत सकता हूँ कुछ देर सुस्ताने के लिए।"[1]

अशोक वाजपेयी 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में विभिन्न बिम्बों का प्रयोग करते हैं जो एक दूसरे से जुड़े होने के कारण विशिष्ट अर्थ प्रदान करते हैं जैसे - 'पृथ्वी का उत्साह', 'आकाश का मौन', 'नदी के तट का बेसुध होना', 'चंद्रमा की ओर भागते यान', 'पृथ्वी को हाथों से उठाना', 'दरवाजे पर चंद्रमा', 'पदचापों का सुनाई देना', 'पत्तियों का काँपना', 'खिड़की पर बुदबुदाना', 'नदी के किनारे फूल', 'बारिश की आखिरी बूँद', 'पत्तियों से घिरा पेड़', 'प्रेम के लिए सूर्य से उदय और अस्त की माँग करना', 'बालटी का खालीपन बढ़ना', 'आत्मा की तरह जकड़ना', 'पक्षियों का हवा में चलना', 'नदी तल से चट्टान का उभरना', 'पानी को भेदना', 'दरवाजे का देखना', 'धूप का खिलखिलाना' आदि विभिन्न बिम्बों का प्रयोग अशोक वाजपेयी की कविताओं में दृष्टिगोचर हुए हैं जो कविता की समझ और अर्थवत्ता को और अधिक पारदर्शी बनाने में कारगर सिद्ध हुए हैं। इन नवीन बिम्बों के प्रयोग से कविता के शिल्प में भी काफी निखार आया है। बिम्ब शिल्प के माध्यम से ही कोई भी

1. वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013, पृष्ठ – 18।

रचनाकार आत्मानुभूतियों को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करता है। अशोक वाजपेयी शब्दों के माध्यम से विभिन्न बिम्बों का निर्माण किया है।

अशोक वाजपेयी नवीन बिम्बों के ऐसे शिल्पकार हैं जो जटिलतम और सूक्ष्म संवेदनाओं को भी अपनी कविताओं में बिम्बों के मार्फ़त मूर्तरूप प्रदान करने में सफल हुए हैं। अशोक वाजपेयी की कविताओं में सृजनात्मकता का गहरा मर्म, उनके द्वारा चुने गए कविता के बिम्ब विषय हैं, जो कविता की दृश्यात्मक एवं भावात्मक परिस्थिति को समझने में सार्थक सिद्ध होती है। अशोक वाजपेयी की कविताओं का शिल्प-विधान उनकी सृजनात्मक शब्द संयोजना का अत्यंत सुगठित विन्यास लिए हुए है। 'कहीं कोई दरवाजा' की कविताओं में प्रतीक और बिम्बों के नवीन प्रयोगों ने कविता की विषय वस्तु के साथ भाषा की सम्प्रेषणीयता का गुण अन्य समकालीन हिन्दी कवियों की काव्य रचनाओं से अधिक प्रभावी सिद्ध हुआ है। अंततः हम कह सकते हैं कि 'कहीं कोई दरवाजा' काव्य-संग्रह की कविताओं में अशोक वाजपेयी अपने भावों और विचारों को अपनी कविताओं में अनूभूति के स्तर पर परखते हुए संवेदनाओं के समुद्र में डुबकी लगाते हैं तथा विवेकपूर्ण नवीन शब्दावली का प्रयोग करते हैं। कहीं कोई दरवाजा की कविताओं में प्रतीक और बिम्ब का अद्भुत अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हुई है जिससे कविताओं में एक नया शिल्प गढ़ने में सफल हुए हैं।

उपसंहार

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध **अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' में संवेदना और शिल्प** समकालीन हिन्दी कवि अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' पर शोध कार्य किया गया है । प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध "**अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' में संवेदना और शिल्प**" का अध्ययन करने के लिए अशोक वाजपेयी के साहित्यिक व्यक्तित्व के अंतर्गत विभिन्न काव्य-संग्रह, आलोचना ग्रन्थ एवं अन्य सभी साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन किया गया है । समकालीन हिन्दी साहित्य में साठोत्तरी कविता के काल में अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं के माध्यम से साहित्य जगत में प्रवेश करते हैं।

प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध "**अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' में संवेदना और शिल्प**" में मैंने जिन उद्देश्यों को शोध-प्रस्ताव में रखा था। उन तमाम उदेश्यों को ध्यान में रखते हुए अध्ययन के दौरान हम पाते हैं कि अशोक वाजपेयी अपने काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' की कविताओं में वर्तमान समाज में बढती हुई असामाजिकता, टूटते हुए पारिवारिक व सामाजिक रिश्तों तथा समाज की वर्तमान स्थितियों की पड़ताल कर उन्हें पुनः स्थापित करने का महत्वपूर्ण प्रयास करते हैं। '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताएँ समाज की वर्तमान स्थिति से रू-ब-रू कराती हैं। अशोक वाजपेयी ने अपने काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' की कविताओं में समाज के विभिन्न मुद्दों को केंद्र में रखा है जिसमें समाज की समस्याओं की पड़ताल की गई है । समाज में व्याप्त विभिन्न जटिलताओं व समस्याओं जैसे हिंसा, भ्रष्टाचार, बेईमानी, भूख, गरीबी, एवं परिवार, समाज व पड़ोसियों से लगातार टूटते जा रहे आपसी सम्बन्ध आदि को उजागर करती हैं तथा इनकी समस्याओं के समाधान भी खोजती हैं । अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' की कविताओं में भारतीय संस्कृति की अद्भुत छवियाँ दृष्टिगोचर हुई हैं। अध्ययन के दौरान हम पाते हैं कि वे अपनी कविताओं में

छोटी-छोटी चीजों में भारतीय संस्कृति की पहचान को तलाशते हुए नजर आए हैं । '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में अशोक वाजपेयी ने हमारे भारतीय समाज में नष्ट होती भारतीय संस्कृति को बचाने व सहेजने का साहित्य एवं भारतीय समाज से बेहद संजीदगी के साथ अनुग्रह किया है । '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में भारतीय संस्कृति की पहचान चिन्ह के लगातार लुप्त होते जा रहे संसाधनों व सांस्कृतिक बिरासत की छोटी-छोटी चीजों जैसे- मिटटी का बरतन आदि पर चिंता व्यक्त करते हैं । हमारे भारतीय समाज से धीरे-धीरे नष्ट हो रही या जो नष्ट होने की कगार पर भारतीय सांस्कृतिक बिरासत को अशोक वाजपेयी '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं के मार्फ़त साहित्य एवं समाज में शिद्दत के साथ उनकी पड़ताल कर स्थापित करते हुए नजर आते हैं।

'कविता' या 'साहित्य' की कोई भी रचना विचारों से निर्मित होती है। उसमें एक 'दर्शन तत्व' आवश्यक रूप से विद्यमान रहता हैं क्योंकि दर्शन एक विचार है और इसके आभाव में 'कविता' या 'रचना' का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' की कविताओं का अध्ययन करने के दौरान हम पाते हैं कि अशोक वाजपेयी की कविताओं में निहित भारतीय दर्शन की आस्तिक एवं नास्तिक दोनों शाखाओं का विराट समन्वय दृष्टिगोचर हुआ है। अशोक वाजपेयी अपनी कविताओं में एक ओर जहाँ ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकारते हुए नजर आते हैं तो वहीं दूसरी ओर ईश्वर और आत्मा का खण्डन करते हुए भी नजर आए हैं। यदाकदा पाश्चात्य दर्शन की अस्तित्ववादी विचारधारा का भी प्रभाव परिलक्षित हुआ है।

समकालीन हिन्दी कवियों में अशोक वाजपेयी की प्रेम कविताओं का विशिष्ट स्थान है । समकालीन हिन्दी काव्य परिदृश्य में इनकी प्रेम कविताओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है जिसका कारण उनकी कविताओं में प्रेम के प्रति गहन आसक्ति है । इसलिए इनकी कविताओं को देहवादी कविताओं की संज्ञाएँ दी गई हैं परन्तु ऐसा नहीं। अशोक वाजपेयी महज देहवादी प्रेम कविताओं के कवि

नहीं बल्कि मनुष्य जीवन के प्रति प्रेम के कवि हैं। अशोक वाजपेयी जीवन के अनछुए अनुराग के कवि हैं। वे संसार के प्रति प्रेम के कवि हैं क्योंकि उनकी कविता संसार के अनुराग से उपजती है। अशोक वाजपेयी 'प्रकृति और प्रेम-सौंदर्य' से जुडी कविताएँ प्रारंभ से ही रचते आ रहे हैं लेकिन '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह में प्रकृति और प्रेम-सौन्दर्य की अद्भुत छवियाँ दृष्टिगोचर हुई हैं। अशोक वाजपेयी 'प्रकृति और प्रेम' से संदर्भित कविताओं में प्रकृति से या प्रेम में होड़ नहीं बाँधते और न प्रेम में प्रकृति के जैसी सुन्दर उपमाएँ देते हैं बल्कि प्रकृति से प्रेम के लिए अर्थात सूर्य से उदय और अस्त, आकाश से नीलिमा और असीमता आदि के लिए विनम्र निवेदन करते हुए दृष्टिगोचर हुए हैं। प्रकृति के लगातार हो रहे दोहन, बढ़ते हुए प्रदूषण, जंगलों के निरंतर कटते जाने, नदियों व जलाशयों के सूखते जाने आदि पर गहन चिंता व्यक्त करते हैं तथा इनके कारणों की पड़ताल कर उन्हें बचाने व सहेजने का प्रयास '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं के मार्फ़त करते हुए दिखाई देते हैं। अशोक वाजपेयी के '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्यसंग्रह की कविताओं में प्रकृति और प्रेम के प्रति गहन संवेदना अभिव्यक्त हुई है।

भारतीय समाज में 'मूल्य' मनुष्य के जीवन का आधार होते हैं जिससे मनुष्य के चरित्र का निर्माण होता है। मूल्य हमारे जीवन यापन की एक शैली है जिनके आधार पर हम एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सकते हैं। मूल्य विभिन्न प्रकार के होते हैं उनमें एक 'मानवीय मूल्य' भी होता है जो मनुष्य के जीवन से संदर्भित होता है। वैसे अन्य मूल्य भी मनुष्य के जीवन से ही सम्बंधित हैं लेकिन 'मानवीय मूल्य' व्यक्ति के चरित्र का परिचायक होता है। अशोक वाजपेयी 'मानवीय मूल्यों' के भी कवि हैं। अशोक वाजपेयी ने **'कहीं कोई दरवाजा'** काव्य-संग्रह की कविताओं में वर्तमान समाज व मनुष्य में बढती हुई 'मूल्यहीनता' पर चिंता अभिव्यक्त की है तथा अपनी कविताओं में समाज में व्याप्त मानवीय मूल्यों की कमी व हीनता के कारणों की तलाश करते हैं। वे अपनी कविताओं में नष्ट होते सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, प्रेम, आदि

मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं को पुनः स्थापित करते हैं। अशोक वाजपेयी की विभिन्न रचनाओं के अध्ययन पश्चात् हम पाते हैं कि अशोक वाजपेयी साहित्य और समाज के प्रति बेहद संवेदनशील साहित्यकार हैं। उनकी कविताओं में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण साहित्यिक रचनाओं में मानवीय संवेदनाओं की अद्भुत छवियाँ परिलक्षित हुई हैं। अशोक वाजपेयी अपने काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' की कविताओं में संवेदना के स्तर पर वे दुधमुंही बच्ची से लेकर एक बीढ़ी पीते बृद्ध चौकीदार तक कि खबर रखते हैं। '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में अशोक वाजपेयी बेहद संवेदनशील कवि के रूप में देखे जा सकते हैं।

अशोक वाजपेयी कविता को जीवन मानते हैं और उस जीवन को 'शब्द' में निहित पाते है। 'शब्द' से ही भाषा का निर्माण होता है और भाषा से मनुष्य का। भाषा के आभाव में मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता क्योंकि यदि भाषा न हो, तो मनुष्य और जानवर में कोई फर्क नहीं रह जाता। यह भाषा ही है जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है। किसी भी साहित्य रचना में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान रहता है क्योंकि भाषा में ही साहित्य की रचना एवं पहचान संभव होती है। अशोक वाजपेयी अपने काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' की कविताओं में एक ऐसी भाषा का निर्माण करते हैं जिसमें अनंत, पृथ्वी, ब्रम्हाण्ड, स्मृति, उत्सुक, सुन्दर, ड्राइवर, स्टेशन, प्लेटफार्म, अलविदा, गुनाह, पशोपेश, मुमकिन, मुकाम, फ़र्क, हिलगे, टटोलना आदि तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी व क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। हम कह सकते हैं कि '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं की भाषा अपने अतीत से जुडी होकर भी नवीन लगती है। '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं की भाषा एक सिद्धहस्त कवि की भाषा के रूप में परिलक्षित हुई है। 'शिल्प' रचना की भाषा से ही संभव होता है क्योंकि शिल्प का आधार भाषा है। शब्दों और शब्दों से निर्मित भाषा में शिल्प की रचना संभव होती है। अशोक वाजपेयी '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं में भाषा के नवीन प्रयोगों

से एक नया शिल्प गढ़ने में सफल हुए हैं। अशोक वाजपेयी ने अपनी कविताओं में प्रयुक्त शब्दों से भाषा में नए काव्य बिम्बों में जैसे- 'पक्षी का हवा में चलना' आदि। साथ ही विभिन्न नए प्रतीकों का भी प्रयोग किया गया है जैसे- 'छाता' समाज का प्रतीक, 'टोकनी' मनुष्य के हृदय का प्रतीक है, 'नदी' संस्कृति का प्रतीक आदि नवीन प्रतीक योजनाएँ दृष्टिगोचर हुई हैं। '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की कविताओं के शिल्पगत अध्ययन के आधार पर हम कह सक्लते हैं कि कवि अशोक वाजपेयी ने अपनी इन कविताओं में नवीन शिल्प योजना को गढ़ने का सार्थक प्रयास किया है।

समकालीन हिन्दी कवि अशोक वाजपेयी हिन्दी कविता से अलक्षित विषयों में प्रेम, प्रकृति, समाज, संस्कृति और जीवन मूल्यों को अपनी कविताओं का विषय बनाते हैं। अशोक वाजपेयी वर्तमान मनुष्य के जीवन संघर्ष और समाज की समस्याओं को अपनी कविताओं में अद्भुत ढंग से प्रस्तुत करते हैं। अशोक वाजपेयी महज कवि ही नहीं हैं बल्कि आलोचक भी हैं जो उनके विभिन्न अलोचना ग्रंथों के अध्ययन के दौरान दृष्टिगोचर हुआ है । अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' की कविताएँ विपरीत समय में भयभीत या समस्याओं से मुँह मोड़ लेने वाली कविताएँ नहीं बल्कि उसी दुर्दिन भरे समय में भी कुछ अच्छा करने और सकारात्मक सोचने का संबल प्रदान करती हैं। अशोक वाजपेयी का काव्य-संसार बहुत ही व्यापक है क्योंकि इनकी कविताओं में हमेशा एक नई जमीन को तलाश करने की जिद रही है । वे अपनी सरल सिद्धहस्त भाषा में छोटी-छोटी कविताओं के मार्फ़त बड़ी बात कहने वाले कवि हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध **अशोक वाजपेयी के काव्य-संग्रह 'कहीं कोई दरवाजा' में संवेदना और शिल्प** में वर्तमान साहित्य एवं समाज से संदर्भित समाज, संस्कृति, प्रकृति, प्रेम-सौन्दर्य, संवेदना और मानवीय मूल्यों की पड़ताल कर उन्हें बड़ी शिद्दत के साथ प्रस्तुत किया गया है। '**कहीं कोई दरवाजा**' काव्य-संग्रह की भाषा में एक नयापन भी दृष्टिगोचर होता है। इस मानी में

देखा जाये तो अशोक वाजपेयी का काव्य-संग्रह '**कहीं कोई दरवाजा**' समकालीन हिंदी कविता में तो विशिष्ट स्थान रखता ही है साथ ही समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं से साक्षात कराता है और उन्हें सुलझाने का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रन्थ :

- वाजपेयी, अशोक. कहीं कोई दरवाजा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2013

सन्दर्भ ग्रन्थ :

- अग्रवाल, जी. के.. मानव समाज. आगरा : आगरा बुक स्टोर, सन् 1985
- अग्रवाल, पृथ्वीकुमार. भारतीय संस्कृति की रुपरेखा. वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, सन् 2010
- कुमार, दीपक. भारतीय संस्कृति. वाराणसी : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, सन् 2014
- गुप्त, उमाकान्त, नई कविता के प्रबंधकाव्य शिल्प और जीवन दर्शन. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन् 2000
- चतुर्वेदी, पंकज. निराशा में भी सामर्थ्य. हरियाणा : आधार प्रकाशन, सन् 2013
- जैन, नेमीचंद. मुक्तिबोध रचनावली (भाग-5). नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2011
- दिनकर, रामधारी सिंह. संस्कृति भाषा और राष्ट्र. नई दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, सन् 2008
- धर्मवीर, अशोक बनाम वाजपेयी : अशोक वाजपेयी. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन् 2004
- नगेन्द्र, नयी समीक्षा : नए सन्दर्भ. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, सन् 1970
- नवल, नन्दकिशोर. समकालीन काव्य यात्रा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2004
- निगम, शोभना. पाश्चात्य दर्शन के सम्प्रदाय. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, सन् 2013
- निगम, शोभना. भारतीय दर्शन. वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, सन् 2008

- पानेरी, हेमेन्द्र कुमार. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण. उदयपुर : संधि प्रकाशन, सन् 1974
- पाण्डेय, मैनेजर. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. पंचकूला : हरियाणा ग्रंथ अकादमी, सन् 2014
- पाण्डेय, श्रीकान्त. भारतीय दर्शन. मेरठ : साहित्य भण्डार, सन् 2012
- पाण्डेय, सरस्वती, गोविन्द पाण्डेय, हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास. इलाहबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन, सन् 2014
- पाण्डेय, अमिता. समीक्षा पत्रिका. वर्ष-49. अंक-02. जुलाई-सितम्बर. इंदिरापुर उत्तरप्रदेश, सन् 2016
- प्रजापति, अमृत एस.. अशोक वाजपेयी एक : अध्ययन. पी.एचडी शोधप्रबंध. गुजरात : गुजरात विश्वविद्यालय, सन् 2002
- बाहरी, हरदेव. हिन्दी शब्दकोश. नई दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, सन् 2016
- बाबूराम, हिंदी निबंध साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन् 2002
- भारती, धर्मवीर. मानव मूल्य और साहित्य. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् 1960
- मिश्र, सत्यदेव. पाश्चात्य काव्यशास्त्र अधुनातन सन्दर्भ. इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन, सन् 2016
- रमेन्द्र, समाज और राजनीतिक दर्शन. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, सन् 2005
- राव, गोविंद, आठवें दशक के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, मराठवाडा विश्वविद्यालय, सन् 2006
- रोहिताश्व, समकालीन कविता और सौन्दर्यबोध. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन् 1996
- वाजपेयी, अशोक. फ़िलहाल . नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2007

❖ वाजपेयी, कैलाश. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प. नई दिल्ली : आत्माराम एण्ड संस , सन् 1963

❖ वाजपेयी, अशोक. मेरे साक्षात्कार. नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, सन् 1998

❖ वर्मा, भगवतीचरण. सामर्थ्य और सीमा. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2015

❖ वाजपेयी, अशोक. बहुरि अकेला. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन् 1992

❖ वाजपेयी, अशोक. नक्षत्रहीन समय में. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2016

❖ वाजपेयी, अशोक. कविता का गल्प. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, सन् 1997

❖ शर्मा, जी.एल.. समाजशात्र. आगरा : उपकार प्रकाशन, सन् 2010

❖ शर्मा, रामनाथ. शिक्षा दर्शन. नई दिल्ली : अटलान्टिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, सन् 2006

❖ शर्मा, हर्षबाला. भारतीय काव्य शास्त्र. दिल्ली : श्री नटराज प्रकाशन, सन् 2015

❖ शर्मा, सुरेश. रघुवीर सहाय प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2013

❖ सहगल, शशि. नयी कविता में मूल्यबोध, नई दिल्ली : अभिनव प्रकाशन, सन् 1976

❖ सिंह, बच्चन. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सन् 2001

❖ सिंह, नामवर. कविता के नए प्रतिमान. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2016

❖ सिंह, नामवर. दूसरी परंपरा की खोज. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2003

❖ सिंह, योगेन्द्र प्रताप. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका. इलाहबाद : लोकभारती प्रकाशन, सन् 2007

❖ सिंह, संपा.- नामवर. चिंतामणि. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2003

❖ सुमा, अबू. अशोक वाजपेयी की काव्य संवेदना. पीएचडी शोध प्रबंध. असम : असम विश्वविद्यालय, सन् 2010

❖ सोनटक्के, माधव. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ. कानपुर : चिंतन प्रकाशन, सन् 1988

❖ होता, अरूण. समीक्षा पत्रिका. वर्ष-49. अंक-02. जुलाई- सितम्बर. इंदिरापुरम उत्तरप्रदेश, सन् 2016

❖ त्रिपाठी, अरविन्द. प्रतिनिधि कविताएँ. नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, सन् 2014

❖ श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन कविता का यथार्थ. चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, सन् 1988

❖ श्रीवास्तव, परमानन्द. समकालीन हिन्दी कविता. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, सन् 2012

अन्य सहायक ग्रन्थ :

❖ अग्रवाल, पुरोषत्तम. कोलाज : अशोक वाजपेयी. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन , सन् 2012

❖ कुमार, शशिप्रभा. भारतीय संस्कृति विविध आयाम. नई दिल्ली : विद्यानिधि प्रकाशन, 2005

❖ जैन, निर्मला. पाश्चात्य साहित्य चिंतन, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, सन् 2013

❖ तिवारी, अजय. समकालीन कविता और कुलीनतावाद. नई दिल्ली : राधाकृष्ण_प्रकाशन,_सन् 1994

❖ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास. नोएडा : मयूर पेपरबैक्स, सन् 2004

❖ यादव, राजेन्द्र. शताब्दी की बैचेनी का कवि अशोक वाजपेयी. नई दिल्ली : आयुष पब्लिशिंग हाउस, 2016

❖ सिंह, केदारनाथ. आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सन् 1971

❖ त्रिपाठी, राममनोहर, हिन्दी कविता संवेदना और दृष्टि. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, सन् 1995

शब्दकोश :

❖ दुबे, अभय कुमार. संपा. समाज विज्ञानकोश. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, सन् 2013

❖ प्रसाद, कालिका. वृहत हिन्दी कोश. वाराणसी : ज्ञान मण्डल प्रकाशन, सन् 1956

❖ बाहरी, हरदेव. हिन्दी शब्दकोश. नई दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, सन् 2016

पत्रिकाएँ :

❖ समीक्षा, संपा. सत्यकाम. वर्ष-49. अंक-02. जुलाई-सितम्बर, सन् 2016

❖ सृजन समीक्षा, संपा. डॉ. सत्यभान. वर्ष-12. अंक-03. जनवरी-मार्च. दौलतपुर बाराबंकी, सन् 2016

❖ लहक, संपा. निर्भय देवयांश. अंक – 21-23. मई – जुलाई. कोलकाता, सन् 2015

शोध प्रबंध :

❖ प्रजापति, अमृत एस.. अशोक वाजपेयी एक : अध्ययन. पी.एचडी शोधप्रबंध. गुजरात : गुजरात विश्वविद्यालय, सन् 2002

❖ सुमा, अबू. अशोक वाजपेयी की काव्य संवेदना. पीएचडी शोध प्रबंध. असम : असम विश्वविद्यालय, सन् 2010

अंतर्जालीय स्रोत :

❖ https://samalochan.blogspot.in/2013/01/blog-post_16.html, 12/08/2017

- http://www.hindisamay.com, 15/10/2017
- https://satyagrah.scroll.in/author/66, 25/11/2017
- https://rishabhuvach.blogspot.in, 28/11/2017
- http://kavitakosh.org, 02/01/2017

परिशिष्ट : प्रकाशित शोध पत्र संलग्न

Research maGma
An International Multidisciplinary Journal
ISSN NO- 2456-7078 IMPACT FACTOR- 4.520
VOL-1, ISSUE-9, NOV-2017 UGC JOURNAL ID- 63465

नाउम्मीद के बरक्स उम्मीद की कविताएँ : एक संक्षिप्त विश्लेषण (कहीं कोई दरवाजा के संदर्भ में)

दिनेश कुमार अहिरवार
एम .फिल. शोध छात्र, हिंदी विभाग
साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्यन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्यप्रदेश

वरिष्ठ कवि अशोक वाजपेयी की काव्य यात्रा का सफर 'शहर अब भी सम्भावना है' (1966) से प्रारंभ होता है और 'कहीं कोई दरवाजा' (2013) में एवं 'नक्षत्रहीन समय में' (2016) तक की यात्रा तय करते हुए अभी भी अनवरत रूप से जारी है ।अशोक वाजपेयी को कविता लिखते हुए एक अधसदी से भी अधिक समय हो गया है जो उनकी कविता के प्रति अशक्ति और सृजनशीलता की अदम्य जिजीविषा का प्रमाण है । इनकी कविताओं को लेकर समकालीन हिंदी आलोचकों ने अक्सर यह आक्षेप लगाया है कि अशोक वाजपेयी सिर्फ 'देह और गेह' के कवि हैं क्योंकि अशोक वाजपेयी ने अधिकांश कविताएँ प्रेम के सन्दर्भ में ही लिखी हैं । मानाकि अशोक वाजपेयी की कविताओं में प्रेम के प्रति अनुराग का उल्लास है तो यह सही ही तो है, क्योंकि समकालीन हिंदी कविता के वृन्दगान में प्रेम को अलक्षित कर दिया गया है जो मनुष्य जीवन के लिए बेहद जरुरी है प्रेम ।प्रेम के बिना जीवन असंभव है । तो इसमें कौन सी गलत बात है कि वह प्रेम कविता लिखते हैं ? गलती उनकी नहीं कि वह प्रेम कविता लिखते हैं बल्कि उनकी कविताओं को लेकर गलतफहमीं उन तमाम आलोचकों की जिन्होंने उनकी कविता को सही अर्थों में समझने की कोशिश ही नहीं की है ।

अशोक वाजपेयी जितने प्रेम के प्रति अनुराग के कवि हैं उतने ही मृत्यु के और जीवन के प्रति अनुराग के भी कवि हैं, क्योंकि उनके यहाँ सिर्फ अपनी प्रेमिका के लिए संबोधित कविताएँ ही नहीं है बल्कि माँ, काका, लुहार, बढई, कुंजड़ा और कवि से लेकर दुधमुही बच्ची, खोई हुई गेंद को खोजते पडोसी के बच्चे, ठण्ड में ठिठुरते बीड़ी पीते हुए बूढ़े आदमी को भी अपनी कविता में रचते हैं । इसलिए अशोक वाजपेयी को महज 'देह और गेह' के कवि कहना ज्यादती होगी । अशोक वाजपेयी एक लम्बे अरसे से कविता लिख रहे हैं ।इनकी कविता का कैनवास बहुत ही व्यापक है, क्योंकि इनकी कविता जीवन के प्रति अनुराग की कविता है ।इसलिए इनकी कविता न केवल प्रेम की कविता है बल्कि मनुष्य,पशु, पक्षी, प्रकृति, समय, समाज, राजनीति आदि समस्त जीवन की कविता है ।

'कहीं कोई दरवाजा' 2009 से 2012 के दौरान लिखी गई कविताओं का अशोक वाजपेयी का 2013 में राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित चौदहवां कविता संग्रह है इसमें छोटी बड़ी 62 कविताओं को संग्रहीत किया गया है । इस संग्रह की कविताओं को तीन भागों में विभाजित किया गया है जिनमें दृ(1) अपने हाथों से उठाओ पृथ्वी, (2) मंडला के रास्ते कुछ कविताएँ और (3) नान्त ।

कहीं कोई दरवाजा कविता संग्रह की अधिकांश कविताएँ फ्रांस के एक शहर नान्त में लिखी गई हैं ।कविताओं की रचना का देशकाल या वातावरण कुछ भी रहा हो लेकिन उन कविताओं में भारतीयता की मूल संवेदनाओं की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है । 'दरवाजा' अशोक वाजपेयी का बेहद प्रिय रूपक है, जिसे वह अपनी कविताओं में खूब धडल्ले से प्रयोग करते हैं और जैसा कि इस कविता संग्रह का शीर्षक ही 'कहीं कोई दरवाजा' है ।इस संग्रह की कविताओं में

दरवाजे का रूपक समय और समाज के सन्दर्भ में प्रयोग में किया गया है । आज हम अपने समय और समाज में बाजारवाद और औद्योगीकरण के चलते मनुष्यता को खत्म करते जा रहे हैं और मनुष्यता के तमाम दरवाजे धीरे–धीरे बंद होते जा रहे हैं । हमारे चारों ओर अँधेरा बढ़ता जा रहा है । वह बढता हुआ अँधेरा अमानवीयता का है । ऐसे अँधेरे समय में उनकी कविता इस उम्मीद के साथ उन तमाम बंद होते दरवाजों पर दस्तक देती है कि असल में भले ही न खुल पायें लेकिन शायद कविता में वह दरवाजे खुल जाएँ । इसी संग्रह की भूमिका में लिखते भी हैं कि – ”हमारा समय, दुर्भाग्य से, ऐसा लगता है कि वह समय जिसमें दरवाजे तेजी से बंद हो रहे हैं और अँधेरा बढ़ता जा रहा है जिसे चकाचौंध ढाँप नहीं पा रही है । ऐसे में कई बार कविता दरवाजे के होने और उसके खुल सकने की उम्मीद में दी गई दस्तक हो सकती है ।“1

संग्रह की पहली कविता 'टोकनी' इसमें कवि ने समय के परिवर्तन के साथ समाज और मनुष्यों में मानवीय मूल्यों के ह्रास होने पर अपनी चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं कि ”यकायक पता चला कि टोकनी नहीं है ध्पहले होती थी धजिसमें कई दुःख और हरी–भरी सब्जियां रखा करते थे ध्अब नहीं है ध् दुःख रखने की जगहें कम हो रहीं हैं ।“2

यहाँ पर टोकनी का सन्दर्भ मनुष्य के विशाल ह्दय से है जहाँ पर पहले हम कई दुखों को धारण करने की क्षमता रखते थे लेकिन वह क्षमता अब धीरे–धीरे कम हो गई है । हमारे विशालकाय ह्दय अब कूपमंडूप बन गए हैं जहाँ पर दुःख के लिए कोई जगह नहीं रह गई है । सभी लोग अपने जीवन में सिर्फ सुख ही सुख की लालसा में लगे हुए हैं । 'जूते' कविता दिवंगत पिता के जूतों को केंद्र में रखकर लिखी गई कविता है जिसमें कवि ने हमारे समय और समाज को यह बताने का सार्थक प्रयास किया है कि जब तक लोग जीवित रहते हैं तब तक ही उनकी और उनकी चीजों की अहमियत होती है । उस इन्सान के न रहने पर तो उसकी चीजों को भी दरकिनार कर दिया जाता है जो हमारे समय का अकाट्य सच भी है क्योंकि इस कविता में कोई विचार या कल्पना नहीं बल्कि जीवन के अनुभव की प्रमाणिकता दृष्टिगोचर हो रही है । इसलिए अशोक वाजपेयी को जीवन के प्रति गहन अनुभूति के कवि भी कहा जाता है दृ

”क्योंकि वह दिवंगत पिता के थे ।धफिर एक दिन वे बिला गए ध्शायद अँधेरे में मौका पाकर ध्वे खुद ही अंत की ओर चले गए ।“3

टोकनी, जूता, छाता ही नहीं बल्कि ऐसी तमाम वस्तुएं हमारे समय से लगातार गायब होती जा रही उन वस्तुओं का लगातार गायब होना, हमारे दुःख को रखने की जगहों का गायब होते जाना है । पानी का कमतर होना और बाल्टी के खालीपन का बढ़ते जाना मनुष्य के अंतःकरण की भावनाओं का कम हो जाने की ओर गहरा संकेत है । 'भले' कविता प्रकृति से संवाद करती हुई कविता है जिसमें वह पेड़ों की नीचे बैठकर बात करते हैं पर्वतों को आवाज देते हैं और प्रतिक्रिया न मिलने पर उनसे उनकी नीरवता और उदासीनता की शिकायत करते हैं । झरनों के किनारे बैठ कर मधुर शोकगीत गाते हैं । ईश्वर की करुणा को अपनी कविता की दहलीज से पुकारते हैं जैसे कि कोई पडोसी बरसों बाद लौटा हो कहीं से और अपने पडोसी को पुकारता है ।

अशोक वाजपेयी मनुष्य और जीवन के साथ संसार के प्रति अनुराग के भी कवि हैं क्योंकि उनकी कविता में न केवल मानवीयता या कि मनुष्य जीवन ही नहीं बल्कि सारे संसार को अपनी कविता का केंद्र बनाते हैं जिसमें पशु, पक्षी, वनस्पति, पृथ्वी, आकाश और सारा संसार गूँजता है 'अब सब कुछ को' कविता का एक कवितांश दृष्टव्य है –

”मैं अब सब कुछ को एक साथ पुकारना चाहता हूँ ध्ऐसी आवाज में धजिसमें मटमैले शब्द ध्वनस्पतियों की गंध ध्पक्षियों की चहचहाहट ध्पृथ्वी का उत्साह ध्आकाश का मौन सब गुथें हों ध्और जिसमें ब्रम्हांड का शून्य गूँजता हो ।“4

'अपने हाथों से उठाओ पृथ्वी' यह एक ऐसी कविता है जिसमें वाजपेयी जी ने आज के वैज्ञानिक युग में जहाँ खुले आम लूट, चोरी, भ्रष्टाचार, समाजवाद, जातिवाद और आतंकवाद आदि अपनी जड़ जमायें बैठे हों । इस भयानक समय में एक कवि को मानवीयता की तलाश करना बड़ा ही जटिल कार्य होता है । अशोक वाजपेयी कवि होने से पहले एक मनुष्य है और मनुष्य होने के नाते मनुष्यता को स्थापित करना उनका प्रमुख दायित्व है, जिसे वह अपनी कविता में बखूबी ढंग से निर्वहन करते हैं । आज के इस नाउम्मीद समय में भी कविता की मार्फत मनुष्य के मनुष्य होने की उम्मीद करते हैं जो केवल कविता में ही संभव है । वह चिंता जाहिर करते हैं कि हम अब देवताओं की तरह निष्पाप नहीं हैं क्योंकि हम मनुष्य हैं और हमारे शब्द हमारी कविता हमारी आकाक्षाएं सब मटमैले हो गए हैं । यह हमारी पृथ्वी भयानक नर संहारों और अकारण बेघर हुए मनुष्यों की है । हम इस पृथ्वी पर जितने अच्छे–बुरे कर्म करते हैं या कि प्राकृतिक संसाधनों को क्षति पहुंचा रहे हैं, उसे प्रकृति अभी नजरन्दाज भले ही कर दे लेकिन वाजपेयी जी अपनी कविता में उसकी पड़ताल करते है । नदियों के असमय सूखने, जंगलों के उजड़ने, नग्न होते पर्वतों की अँधेरी खोहों में अब भी उम्मीद की किरणें है जो सूखे बीज की भांति पड़ी हुई है उन्हें मिट्टी पानी की जरुरत है जिसे मनुष्य पूरा कर सकता है क्योंकि मनुष्य में इसे करने की

क्षमता है । मनुष्य चाहे तो प्रकृति की सुन्दरता को सहेज सकता है और नष्ट भी कर सकता है । 'अपने हाथों से उठाओ पृथ्वी' कविता में कहते हैं कि दृ

"जिसे तुम अपने हाथों सेध्सूर्य की तरह उज्ज्वल और उत्तप्तध्आकाश की तरह असीमध्गढ़ सकते हो ।"5

'तेजी से क्यों' कविता की मार्फत अशोक वाजपेयी हमारे समय की सच्चाई से मुखातिब कराते हुए कहते हैं कि हमारे पास धैर्य, हुनर और किसी कार्य को करने की फुरसत नहीं रह गई है । हम आज जिस समय और समाज में रह रहे हैं उस समाज के लोगों की याददाश्त धीरे–धीरे कम हो रही है क्योंकि भूलना हमारे समय की आदत बन गया है और हम किसी चीज या किसी को भूलकर उससे पीछा छुड़ा देते हैं । आगे कहते हैं कि मुश्किल यह नहीं की हमारे पास समय नहीं है बल्कि हमारी मुश्किल हमारी हड़बड़ी है । आज का प्रत्येक इंसान इतने जल्दी में रहता है कि कुछ न कुछ जरुर भूल जाता है । उन्हें चिंता है कि हम इतने तीव्र चल रहे हैं कि यह नई सदी कुछ जल्दी ही बीत रही है । यहाँ वाजपेयी जी समय और सदी के बीतने में तीव्रता पर चिंता जाहिर करते हैं जो हमारे समय की वास्तविकता है ।

"हम भूलते हैं ध्क्योंकि भूलना हमारे समय की आदत बन गया है ध्हम भूलते हैं ।
क्योंकि वैसा कर हम अपना पल्ला झाड सकते हैं ।"
"हमारी मुश्किल यह नहीं है कि हमारे पास समय नहीं है ।
हमारी मुश्किल है हमारी हड़बड़ी ।"6

अशोक वाजपेयी कविता लिखना शब्दों से क्रीडा करना मानते हैं । शब्दों को और उनमे चरितार्थ थोड़े से जीवन के अनुभवों को एक साथ कविता में प्रकट करते हैं । वह कविता में शब्दों के प्रति अशक्ति के कवि हैं । वह शब्द को सब कुछ मानते हैं क्योंकि शब्द के आभाव में न कविता संभव है और न जीवन । कविता भाषा में ही रची जाती है और उसे प्रस्तुत करना शब्दों में ही संभव है क्योंकि भाषा शब्दों से निर्मित होती है । यह नहीं है कि जितने शब्द कविता में होते है केवल वही हैं, उसके आलावा भी शब्दों का अथाह भंडार है जो कवि जितने शब्दों से अपना तालमेल कविता में बैठा पाता है वही उसको संसार समझता है । जबकि ऐसा कतई नही है जिसे वाजपेयी जी स्वीकार भी करते हैं ।

अशोक वाजपेयी समग्र जीवन की अनुभूतियों को शब्द देने वाले कवि हैं लेकिन उन्हें चिंता शब्दों के लगातार कम पड़ते जाने की हैं क्योंकि शब्द में समय की सचाई होती है और सचाई शब्दों से दूर जा चुकी है । 'जोत शब्द उजियारा हो' कविता में कहते हैं कि, "शब्द की आँच में ध कभी–कभी कोई सच भी पकता है। ध शब्द के घर में ध कभी–कभी कोई सच भी बसता है ।"7

अशोक वाजपेयी हमारे समय और समाज की अवधारणाओं के ही कवि नहीं बल्कि उसके अनुभव यहाँ पर कवि कविता में जीवन के वास्तविक सच की भी बात करता है कि कविता में कभी भी पूरा सच नहीं रहता कविता हर कविता अधूरी सचाई का आख्यान होती है – "कविता यह नहीं मान सकती कि जो शब्दों में आ जाए, वही सचाई है । सच है कि बहुत सारी सचाई कविता या भाषा में आकर ही सच होती है । पर उतना सच यह भी है कि सारी सचाई कविता में नहीं आती, नहीं आ सकती । हर कविता अधूरी सचाई का आख्यान है ।"8

अशोक वाजपेयी जीवन के प्रति अनुराग के कवि होने के नाते मनुष्य के जीवन और उसके चले जाने के बाद भी उसे अपनी कविताओं की मार्फत स्मृतियों में रखने वाले कवि हैं । 'मित्रहीन आकाश' कविता में वह चिंता जाहिर करते हुए कहते हैं कि हम सभी को पता है कि इस नश्वर संसार को छोड़कर सभी मनुष्यों को जाना है लेकिन फिर भी वह कुछ इस संसार में भी रह जाते है वह पूरी तरह से मुक्त नहीं हो पाते बल्कि हमारी स्मृतियों में बने रहते है । क्योंकि उनके साथ बिताया समय, घंटों एक साथ बैठकर की गई बहसें, छोटी–छोटी बातों को लेकर किये गए झगडे, सुख, और दुःख में बिताया समय हमारी स्मृतियों में उनके होने और न होने पर भी लम्बे समय तक बना रहता है ।

'ऐसा क्यों हुआ' कविता में आज के चकाचौंध से ग्रसित मनुष्य के सच की पड़ताल करते हैं कि हम अपनी विभिन्न आकांक्षाओं की पूर्ति की तलाश में अपने समय से इतने आगे निकल गये हैं कि अब लौट पाना किसी खतरे से खाली नहीं है और यह सबके साथ हो रहा है । हम वह तमाम दरवाजे बंद करते जा रहे हैं जिनमें से फिर से निकल पाना बहुत ही मुश्किल है ।

'चुपचाप कुछ भी नहीं था' कविता में वाजपेयी जी संस्कृति के ह्रास पर चिंता जताते हुए कहते हैं कि सभ्यता के नाम पर हमारी सांस्कृतिक विरासत जैसे– कुम्हार द्वारा बनाये गए मिट्टी के बर्तनों को हम अब भूलते जा रहे हैं जो हमारी भारतीय संस्कृति की पहचान थी–

"अब कहीं नहीं जा रही सीढियाँ ध्वहीं पर रखा ध्और भुला दिया गया धमिट्टी का बर्तन ध्चुपचाप कुछ भी नहीं था ।"9

'कहीं कोई दरवाजा' कविता में कवि ने हमारे समय और समाज के उस भयानक दृश्य को शब्दों में प्रकट करने

का प्रयास बेहद संजीदगी के साथ किया है । हम एक ऐसे अँधेरे समय में जी रहे हैं, जहाँ असंख्य हत्याओं की चीखें, विलाप और नरसंहारों के कारण धरती लहूलुहान हो गयी है । आज हम आधुनिकता के दौर में, बाजारों की चकाचौंध को ढाँप नहीं पा रहे हैं और हमारा घर ही आज बाजार बन गया है–

"गहरे नाउम्मीद अँधेरे में ध्चीखों, विलापों और पुकारों के घमासान से ध्उठता है एक लहूलुहान ।"10

कवि–आलोचक विजय कुमार 'कहीं कोई दरवाजा' कविता संग्रह की कविताओं को 'बीसवीं सदी का शोक गीत' की संज्ञा देते हुए कहते हैं कि "अशोक वाजपेयी की कविता मूलतः एक अभ्यर्थना की कविता है जिसके अलग–अलग शेड्स वहाँ आपको दिख सकते हैं । पीड़ा, हर्ष, कामना, निर्वेद, सौन्दर्य, धीरज, सामूहिकता, एकाकीपन, उल्लास, उदासी, स्वप्न और क्षरण ।... कवि इन बिखरी हुई, छिटकी हुई वस्तुओं को एक धुरी पर लाता है,उनके आपसी संबंधों की किसी केन्द्रीय ले को रचता है, उसके वृत्त को फैलाता जाता है । छोटी–छोटी वस्तुएं,मामूली सी लगती स्तिथियाँ, अचीन्हे रह गए स्पंदन, किन्हीं बंद दरवाजों के खुलने की उम्मीद, वनस्पतियों की गंध, टोकनी, बाल्टी, जूते, छातों से जुड़े जीवन के निराले रहस्य, अलक्षित बियाबान, स्मृति की कोई भूमिका, भूली हुई–सी जगह, वर्तमान का कोई ठिठका हुआ क्षण, पवित्रताओं के टूटे–फूटे स्वप्न, मार्मिक आत्मग्लानियां, विकल पछतावे, कुछ सबसे बुनियादी जिरह तो कहीं हमारे सांस्कृतिक पतन का क्लेश और अंदरूनी गवाहियाँ । यानी जो बचा रह जाता है उसी के सहारे कवि की किसी समयातीत या अनवरता को पकड़ने की ख्वाहिश ।"11

अतः हम कह सकते हैं कि 'कहीं कोई दरवाजा' कविता संग्रह की कविताओं में हमारे समय में जो धर्म, विज्ञान, समाज, राजनीति, बाजार, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, मनोरंजन और संचार आदि की चकाचौंध से मनुष्य के अन्तः करण में दुःख, अधैर्य, उदासी, विस्मृति, संवेदनहीन, और अमानवीयता का जो अँधेरा बढ़ा है जिससे मानवीयता के बहुत सारे दरवाजे बंद हो रहे हैं और कुछ तो बंद हो ही चुके हैं । सख्ती और पूरी मुस्तैदी से उन तमाम बंद हो रहे और हो चुके दरवाजों पर अशोक वाजपेयी की ये कविताएँ इस नाउम्मीद के बरक्स उम्मीद के साथ दस्तक देती है । हो सकता है कविता में दरवाजा खुल सकता है और खुलता भी है, क्योंकि कविता एक ऐसा दरवाजा होती है जो समय और समाज के अतीत और वर्तमान की स्तिथि की पड़ताल कर उसे अपनी भाषा में उजागर करती है ।

सन्दर्भ :

1. अशोक वाजपेयी, 'कहीं कोई दरवाजा',राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष–2017, पृष्ठ 5
2. वही, पृष्ठ 11
3. वही, पृष्ठ 13
4. वही, पृष्ठ 20
5. वही, पृष्ठ 23
6. वही, पृष्ठ 25
7. वही, पृष्ठ 76
8. अशोक वाजपेयी, नक्षत्रहीन समय में, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष–2017, पृष्ठ 10
9. अशोक वाजपेयी, 'कहीं कोई दरवाजा',राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, वर्ष–2017, पृष्ठ 43
10. वही, पृष्ठ 86
11. समीक्षा, त्रैमासिक पत्रिका, संपा. सत्यकाम, वर्ष 49, अंक 2, जुलाई–सितम्बर, 2017, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली, पृष्ठ 17

Research maGma

प्रथम अध्याय

अशोक वाजपेयी : काव्य एवं साहित्यिक व्यक्तित्व

1.1 विभिन्न काव्य-संग्रह एवं रचनात्मक प्रक्रिया

1.2 आलोचना ग्रन्थ एवं आलोचनात्मक दृष्टि

1.3 अन्य साहित्यिक विधाएँ

द्वितीय अध्याय

'कहीं कोई दरवाजा' : अंतर्वस्तु एवं दर्शन

2.1 समाज, संस्कृति और दर्शन

2.2 प्रकृति और प्रेम- सौन्दर्य

2.3 मानवीय मूल्य और संवेदना

तृतीय अध्याय

'कहीं कोई दरवाजा' में शिल्पगत वैशिष्ट्य

3.1 समकालीन काव्य भाषा और अशोक वाजपेयी की कविता

3.2 काव्य-संग्रह में भाषा सम्बन्धी प्रयोग

3.3 काव्य-संग्रह में शिल्पगत वैशिष्ट्य

उपसंहार

संदर्भ-ग्रंथ-सूची